स्कूल ऑफ इवेन्जेलिजम्
पाठ्यक्रम

महान आदेश सेवकाई के सिद्धांत

COPYWRITE 2017- EDUCATIONAL RESOURCES
PERMISSION TO FREELY COPY AND DISTRIBUTE,
BUT PLEASE CREDIT SOURCE

पाठ–1
पाठ्यक्रम

मसीही विशेषज्ञ सारे विश्व में मसीहत की वृद्धि के विषय मे इस बात को जानने के लिये छानबीन करते रहे हैं कि मसीहत के प्रसार को बढ़ाने में या इसके प्रसार को धीमा करने में कौन सी बातें प्रभाव डालती हैं। ये विशेषज्ञ इन सिद्धान्तों और विधियों का विस्तृत विवरण लिख चुके हैं, जिससे सम्प्रदाय और धार्मिक समाज इसके विस्फोटक विकास को अनुभव कर सकते है। पाठ्यक्रम की यह श्रृंखला इन सिद्धान्तों का अध्ययन करती है और मसीही कार्यकर्ताओं का इस बात में सहायता करती है कि वे भविष्य में अपनी सेवकाई में इन सिध्दान्तों को लागू कर सकें।

क्रमांक	ईकाई	पाठ	अभ्यास–कार्य
1.	परिचय	पाठ्यक्रम और अभ्यास–कार्य	किसी क्षेत्र में स्थानीय कलीसिया की रूपरेखा; आपको कलीसिया के कमजोर और मजबूत गुणों का विश्लेषण करना चाहिये। फिर उस का उपाय निर्धारित कीजिये, जिससे कलीसिया अपना आत्मिक स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कर सके। आपके उपाय में सुसमाचार प्रसार /शिष्यता की योजना सम्मिलित होनी चाहिये।
2.	कलीसिया का मिशन	कलीसिया का मिशनः परिभाषा	
3.		कलीसिया की धर्मशास्त्रज्ञ परिभाषा	
4.		कलीसिया का मिशनः प्रक्रिया और मनोवृत्ति	
5.		महान आदेश के संबंध में कलीसिया का दर्शन –1	
6.		महान आदेश के संबंध में कलीसिया का दर्शन – 2	
7.		परमेश्वर का मिशन/मनुष्य का उस मिशन में चूक जाना	
8.	परमेश्वर की योजना	परमेश्वर की योजनाः देहधारण	
9.		परमेश्वर की योजनाः संसार में उसके लोग	
10.		पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से कलीसिया बढ़ती है	
11.		परमेश्वर की योजनाः अनुग्रह के साधन	
12.	परमेश्वर की कलीसिया	कलीसिया के रूपकः जीवित बनावट– 1	
13.		कलीसिया के रूपकः जीवित बनावट– 2.	
14.	परमेश्वर का मिशन	परमेश्वर का मिशनः सुसमाचार–प्रचार का विवरण।	
15.		परमेश्वर का मिशनः सर्वसमावेशी सुसमाचार–प्रचार	

16.		परमेश्वर का मिशनः महान आदेश का अगुवा	जो कलीसिया की रूपरेखा नहीं बना पायेंगे उनके लिये अंतिम परीक्षा का विकल्प होगा।
17.		स्वदेशी नेतृत्व प्रशिक्षण–1	
18		स्वदेशी नेतृत्व प्रशिक्षण–2	
19.		परमेश्वर का मिशनः परमेश्वर की ज्योति को केन्द्रित करना।	
20.		बचे हुए मिशन का सिंहावलोकन	
21.	सामाजिक पहलू	वैश्विक सुसमाचार–प्रचार के लिये जातीय पहुंच/पद्धति	
22.		समाजिक पहलू: कार्यकारी साधन	
23.	कलीसिया–रोपण	कलीसिया–रोपण – 1.	
24.		कलीसिया–रोपण – 2.	
25.		कलीसिया रोपण – 3.	
26.		वैश्विक घटक जो कलीसिया–रोपण को प्रभावित करते है	
27.		कलीसिया–रोपण के विश्लेषण हेतु शब्दावली और साधन	
28.		कलीसिया–रोपण आन्दोलन का वर्णन	
29.		कलीसिया–रोपण आन्दोलन को आरंभ करना/बनाए रखना	
30.	कलीसिया वृद्धि के घटक	कलीसिया की वृद्धि के घटक	
31.		कलीसिया की वृद्धि में बाधाएं	
32.		समाजिक वर्ग और सामाजिक–आर्थिक प्रगति	
33.	वृद्धि का मूल्यांकन	कलीसिया की वृद्धि का आंकलन और मूल्यांकन–1	
34.		कलीसिया की वृद्धि का आंकलन और मूल्यांकन–2	
35.	संदर्भ–अनुकूलन (प्रासंगिकता)	संदर्भ–अनुकूलन – 1.	
36.		संदर्भ–अनुकूलन – 2.	
37.		संदर्भ–अनुकूलन – 3.	

पाठ–2
कलीसिया का मिशनः एक परिभाषा

1. आधारभूत परिभाषा –कलीसिया का मिशन उन प्रत्येक बातों का कुल जोड़ है जो मनुष्यों को यीशु मसीह की ओर अग्रसर होने के लिये, उन्हें आत्मा जीतने वाले शिष्य बनाने के लिये, और उन्हें कलीसिया के जीवन में सम्मिलित करने के लिये आवश्यक है।
2. इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य – इस पाठ्यक्रम में हम मसीही कलीसियाओं की प्रकृति, रोपण, गुणात्मक वृद्धि, कार्य, स्वास्थ्य और सुचारू संचालन का अध्ययन करेंगे, जबकि वे उस महान आदेश की आज्ञा का पालन करते हुए देश–देश के लोगों को चेले बनाने के लिये स्वंय को समर्पित करती हैं (मत्ती 28:19)। यह विज्ञान परमेश्वर के वचन के अनन्त सिद्धान्तों को सामाजिक विज्ञान के अवलोकन से जोड़ने का प्रयास करता है, और इसमें डाक्टर डोनाल्ड मैक्गवर्न के मूलभूत अनुसंधान का प्रांरम्भिक बिन्दु के रूप में उपयोग करता है। यह पाठ्यक्रम मात्र सैद्धान्तिक जानकारी ही नहीं देता परंतु इसका प्रायोगिक उपयोग भी सम्मिलित करता है।
   - 2.1 हम इसे व्यवहार में लाते हैंः यह केवल सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम नहीं रहेगा।
     - 2.1.1 सुसमाचार प्रचारः तीन अवस्थाओं में किया जाता हैः
       - 2.1.1.1 उपस्थितिः गैर मसीहियों के साथ उपस्थित रहें।
       - 2.1.1.2 घोषणाः गैर मसीहियों को सम्पूर्ण सुसमाचार घोषित करें।
       - 2.1.1.3 राजी करनाः गैर मसीहियों को समर्पण करने के लिये मनाना।
     - 2.1.2 शिष्यताः सुसमाचार प्रचार के बहुत से घटक हैंः
       - 2.1.2.1 पूछताछः जिस क्षेत्र में सुसमाचार प्रचार करना हैं उसका सर्वेक्षण करें।
       - 2.1.2.2 सुसमाचार प्रचारः सुसमाचार की घोषणा करें
       (परंतु स्मरण रखें कि सुसमाचार का प्रचार करके कार्य समाप्त नहीं हो जाता)।
       - 2.1.2.3 स्थापनाः नये विश्वासियों को दृढ़ करें।
       - 2.1.2.4 सुसज्जित करनाः सेवकाई के लिये आवश्यक व्यक्तिगत प्रशिक्षण और सामग्री प्रदान करें।
       - 2.1.2.5 विस्तारः जिन्हें आप शिष्य बना रहे हैं उन्हें भी आत्माओं को जीतने की और शिष्यता की सेवकाई में सम्मिलित करें।
       - 2.1.2.6 मूल्यांकनः जिन्हे कार्य करने के लिये बाहर भेजा गया है उनका निरीक्षण करें कि कार्य सुचारू रूप से किया जा रहा है या नहीं?
   - 2.2 हम खोज करते हैः हम कलीसिया के स्वास्थ्य के विषय में रोग निदान करने वाले प्रश्न पूछते हैं।
     - 2.2.1 हमारे आसपास के लोगों की आत्मिक और अन्य आवश्यकताओं की खोज करने के द्वारा हम परमेश्वर की अगुवाई और मार्ग निर्देशन को अच्छे से पहचान सकते हैं।
     - 2.2.2 खोज के लिये कुछ प्रश्न निम्नलिखित हैंः–
       - 2.2.2.1 क्या यहां आसपास कोई गांव या क्षेत्र है, जहां कोई भी कलीसिया या मसीही समूह नहीं है?
       - 2.2.2.2 यदि कोई कलीसिया है तो क्या उसमें उन्नति हो रही है? क्या उसमें नयें सदस्य हैं?
       - 2.2.2.3 यदि इस कलीसिया में उन्नति हो रही है, तो क्या इस में बढ़ने वाले लोग इसमें स्थानान्तरित होकर (दूसरी कलीसिया से निकलकर) आ रहे हैं या नये विश्वासियों में से हैं?)
       - 2.2.2.4 क्या कलीसिया में इस वर्ष पिछले वर्ष से अधिक वृद्धि हुई है?
       - 2.2.2.5 साप्ताहिक बाइबल अध्ययन के लिये कितने सदस्य सम्मिलित हो रहे हैं?
       - 2.2.2.6 सुसमाचार प्रचार करने के लिये कितने सदस्य प्रशिक्षित किये जा चुके हैं?
   - 2.3 हम नापते हैः जब तथ्य एकत्रित कर लिये जाते है, तब हम कलीसिया का ''तापमान'' नापते हैं?
     - 2.3.1 यदि सेवकाई महत्वपूर्ण है तो हम उसका परिणाम नापते है?
     - 2.3.2 यदि कलीसिया की स्थिति स्वस्थ नहीं है तो हम इस सत्य को छुपाते नहीं हैं।
     - 2.3.3 हम मात्र गतिविधियों को नहीं परंतु परिणाम को नापते हैं।

2.4 हम मूल्यांकन करते हैः हम परिणामों का अर्थ लगाते हैं।

2.4.1 यह रिपोर्ट कलीसिया के स्वास्थ्य (या अस्वस्थता) को उजागर करती है, और उसके उपाय के लिये उपयुक्त कार्यवाही निर्धारित करती है।

2.4.2 इस रिपोर्ट में कलीसिया की स्थिति का सुधार करने के लिये सिफारीशें होती हैं।

2.4.3 कुछ कलीसियाएं मर जायेंगी यदि वे बहुत ही अस्वस्थ हो जाती हैं।

पाठ–3

कलीसिया का मिशन : कलीसिया–निर्माण–विद्याः कलीसिया की धर्मशात्रज्ञ परिभाषा

1. कलीसिया (अर्थात् चर्च) के लिये हम जिन शब्दों का उपयोग करते हैं उनमें से कुछ बाइबल में नहीं पाये जाते हैंः

1.1 राष्ट्रीय कलीसिया : किसी एक राष्ट्र के सारे मसीही।

1.2 डिनॉमिनेशनल कलीसिया : वे सारे मसीही जो विशिष्ट रीति से स्वीकृत किये गये किसी एक सिद्धांत, नाम और अधिनियम या व्यवस्था के द्वारा एक साथ बंधे रहते हैं।

1.3 इक्युमेनिकल कलीसिया : कलीसियाओं का एकता–वर्धक संघ।

1.4 कलीसिया की ईमारतः जहां मसीही लोग एकत्रित होते हैं वह इमारत या मन्दिर या पैरिश अर्थात् पादरी का इलाका

2. कलीसिया (अर्थात् चर्च) के लिये उपयोग में लाये जाने वाले कुछ शब्द जो बाइबल में पाये जाते हैंः

2.1 विश्वव्यापी कलीसिया – ''लाओस'' और ''क्लेरॉस'' – किसी भी समय के सारे मसीही (अदृश्य)

2.2 स्थानीय कलीसिया – ''एक्लेसिया और ''कोईनोनिया'' – किसी विशेष स्थान में एकत्रित मंडली

2.3 रिफॉर्मेशन ने कलीसिया की परिभाषा इस प्रकार से की हैः ''कलीसिया वह स्थान है जहां वचन की उद्घोषणा होती है, और धार्मिक संस्कार पूरे किये जाते है।''

3. कलीसिया एक संस्था से बढ़कर है।

3.1 बहुतेरे कलीसिया को एक सम्प्रदाय या डिनॉमिनेशन समझते हैं, परंतु बाइबल में सम्प्रदाय या डिनॉमिनेशन्स का अस्तित्व नहीं है।

3.2 कुछ अन्य कलीसिया को एक साधारण इमारत सोचते हैं, परंतु कलीसिया कोई सामग्री नहीं है।

4. कलीसिया यह बाइबल के द्वारा प्रस्तुत धारणा है।

4.1 नया नियम की कलीसिया (अर्थात् चर्च) को दो तरह से परिभाषित किया गया हैः

4.1.1 विश्वव्यापीः पवित्र किये गये लोगों से मिलकर बनी एक देहः (इस चर्च शब्द को अंग्रेजी वर्णमाला के बड़े ''सी'' से आरंभ किया जाता है)।

4.1.2 स्थानीयः स्थानीय मंडली (इस चर्च को छोटे ''सी'' से लिखा जाता है)।

4.2 कलीसिया अर्थात् चर्च के अर्थ में इस बात को महत्व दिया गया है कि परमेश्वर लोगों को उसकी अपनी निज सम्पत्ति बनने के लिये बुलाता है (1 पतरस 2:9)।

4.3 किसी जन का बपतिस्मा एक सार्वजनिक चिन्ह है कि वह परमेश्वर की निज सम्पत्ति बन रहा है।

4.3.1 उसके पाप क्षमा कर दिये गये हैं, उसका नया जन्म हुआ है और वह परमेश्वर के परिवार में प्रवेश करता है।

4.3.2 वह मसीही कहलाया जाता है और उस विरासत को प्राप्त करता है जिसमें अनन्त जीवन भी सम्मिलित है।

4.3.3 जब वह बपतिस्मा लेता है तब उसका पुराना पापमय जीवन दफन हो जाता है (लाक्षणिक रूप से), और वह मसीह में नये जीवन हेतु जीलाया जाता है।

5. कलीसिया एक जीवित बनावट हैः मसीह की देह, एक भेड़शाला

5.1 कलीसिया का प्राथमिक मिशन ''वृद्धि करना'' है।

5.1.1 सब जीवित वस्तुएं बढ़ती हैं; यदि वह बढ़ नहीं रही हैं तो वह मर रही हैं।

5.1.2 यह बात प्राकृतिक और अलौकिक है कि कलीसिया बढ़ती ही है।

5.1.3 कलीसिया को लगातार एक धार्मिक पुर्नजागरण का अनुभव करते रहना चाहिये।

5.1.4 इस प्रकार बढ़ना एक मापदण्ड है, कोई अपवाद नहीं।

5.1.5 प्रत्येक कलीसिया को एक ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिये जहां लोग बढ़ सकेंगे (2 पतरस 3:18)।

5.2 कलीसिया को गुणात्मक रीति से (संख्या में) और गुणवत्ता में भी बढ़ना चाहिये (गुणवत्ता में अर्थात् विश्वास में, आत्मिक परिपक्वता में, और धार्मिकता में)।

5.3 हम कभी–कभी कारण बताते हैं कि कलीसिया क्यों नहीं बढ़ रही है।

5.3.1 जो कलीसियाएं बढ़ नहीं रही है उनमें समस्या है, और वे परमेश्वर की इच्छा के विरूद्ध जा रही हैं।

5.3.2 समस्या हमेशा कलीसिया के मानवीय घटक में पाई जाती है; यह कभी भी परमेश्वर की ओर से त्रुटी नहीं होती है।

5.4 कुछ उल्लेखनीय अपवाद हो सकते हैः

5.4.1 हो सकता है कि सताव के कारण कलीसिया के कुछ सदस्य चले जायें (प्रेरितों 8:1)।

5.4.2 कुछ सदस्य दूर–दराज के लोगो को सुसमाचार सुनाने के लिये मिशनरी बनकर कलीसिया छोड़कर चले जायें (प्रेरितो 13: 1–3)।

पाठ–4
कलीसिया का मिशन : प्रक्रिया और मनोवृत्ति

1. कलीसिया का मिशन एक प्रक्रिया हैः यह एक कार्यक्रम नहीं हैं।

1.1 कलीसिया का मिशन इसमें निहित सिद्धान्तों के द्वारा परिभाषित है।

1.1.1 कलीसिया के बुनियादी विश्वास परमेश्वर के वचन पर आधारित हैं।

1.1.2 ये सिद्धान्त कलीसिया के सारे सदस्यों पर प्रभाव डालते है।

1.1.3 ये सिद्धान्त एक मंडली के सारे समूहों को जोड़ते हैं, क्योंकि वे कलीसिया के मुख्य लक्ष्य का वर्णन करते हैं।

1.1.4 सक्रियता की यह क्षमता धन्यवाद का विषय हैः कलीसिया अपने विभिन्न सदस्यों के साथ मिलकर उद्देश्य की एकता के साथ कार्य करती और योजना बनाती है।

1.1.5 यह एक क्षणिक अनुभव नहीं हैं जो समय के साथ बीत जाता हैः ये सिद्धान्त विभिन्न समयों पर लागू किये जा सकते हैं।

1.2 एक कार्यक्रम सीमित होता है, क्योकि यह कलीसिया के सब पहलू पर प्रभाव नहीं डालता हैं।

2. कलीसिया का मिशन एक मनोवृत्ति हैः यीशु और उसके महान आदेश के प्रति समर्पण

2.1 यह एक विचारधारा, धर्मविज्ञान, तत्वज्ञान या प्रक्रिया से बढ़कर है; यह एक मनोवृत्ति है।

2.2 यह एक आशावाद की मनोवृत्ति है।

2.2.1 यीशु ने लोगों को असम्भव कार्य करने के लिये नहीं भेजा था।

2.2.2 विश्वास का एक छोटा–सा बीज पर्वत को हटा सकता है । (मत्ती 17:20)

2.2.3 यीशु ने अपनी कलीसिया बनाने का वादा किया है। (मत्ती 16:18)

2.3 यह एक व्यावहारिकता की मनोवृत्ति है।

2.3.1 हमें प्रत्येक कार्य का मूल्यांकन व्यावहारिकता के साथ करना चाहियेः क्या यह विश्वासियों की वृद्धि और परिपक्वता में योगदान कर रहा है?

2.3.2 परमेश्वर द्वारा हमें दी गई सेवकाई के अच्छे भंड़ारी होने के नाते यह आवश्यक है कि हम सावधानी पूर्वक सेवकाई के कार्यक्रम और परियोजना का विश्लेषण और मूल्यांकन करें।

2.3.3 बहुत सारी कलीसियाएं बहुतेरे कार्यक्रमों को मात्र परम्परा के कारण जारी रखती हैं। ''हमने हमेशा इसे इसी प्रकार से किया है।''

2.3.4 अच्छे भंड़ारीपन की मांग होती है कि हम ऐसी परंम्पराओं को निकाल दिया जाये जो मसीह की देह अर्थात् कलीसिया में गुणात्मक या संख्यात्मक वृद्धि नहीं लाती हैं।

2.4 यह जिम्मेदारी की मनोवृत्ति है।

2.4.1 परमेश्वर के लोग अपने समय, कौशल, ऊर्जा और स्त्रोतों के उपयोग के लिये जिम्मेदार होते हैं।

2.4.2 एक मसीही जन अपने स्वामी को पसंद आने के लिये कार्य करता हैं (मत्ती 25:15)।

2.4.3 प्रत्येक प्रयास को उसकी प्रभावशीलता के संबंध में मापना और मूल्यांकन कर लेना चाहियें।

2.4.4 यीशु मसीह जितना कार्यविधि में रूचि रखता है उतना ही उसके परिणाम में भी रूचि रखता है।

2.4.4.1 वह चाहता है कि भोज के घर में बैठने के सारे आसन भर जायें। (लूका 14:23)

2.4.4.2 वह चाहता है कि हम खेतों में फसल काटें। (मत्ती 9: 37)

2.4.4.3 वह चाहता है कि हम मछलियां पकड़ें। (लूका 5:4)

2.4.4.4 वह चाहता है कि उसके लोग मनुष्यों के पकड़ने वाले बने। (मत्ती 4:19)

2.5 यह दृढ़ता के साथ कार्य करते रहने की मनोवृत्ति है : हम समय का सदुपयोग करते हैं।

2.5.1 समय कम है, हमे अभी कार्य करना चाहिये । (यूहन्ना 9:4)

2.5.2 प्रभु शीघ्र आनेवाला हैः हमें शीघ्रता से कार्य करना चाहियें। (1 थिस्सलुनिकियों 5:2)

2.5.3 यह संसार ऐसे लोगों से भरा हुआ है जो प्रतिदिन यीशु के बिना मर जाते हैं।

पाठ–5
महान आदेश के संबंध में कलीसिया का दर्शन –1

1. एक कलीसिया का महान आदेश के संबंध में जो विश्वास है वही संसार में उसकी भूमिका को निश्चित करेगा।

1.1 यदि किसी समूह का विश्वास है कि उनका सर्वोच्च मिशन इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को सुसमाचार बताने का है तो वे अपनी कार्यविधियों और बजट की योजना को इसी के अनुसार करेंगे (मरकुस 16:15)।

1.2 यदि वह समूह विश्वास करता है कि उसका सर्वोच्च मिशन सारी जातियों के लोगों को शिष्य बनाने का है तो वे अपनी कार्यविधियों और बजट की योजना को इसी के अनुसार करेंगे (मत्ती 28: 19–20)।

1.3 कोई समूह जिस किसी बात को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता होने का विश्वास करता है वही बात निर्धारित करती कि वह अपना समय, ऊर्जा और धन कैसे खर्च करता है।

2. कलीसिया का महान आदेश के बारे में जो विश्वास होगा वही उसकी पहचान को निश्चित करेगा।

2.1 आसपास के समुदाय के लोग देखते हैं कि कलीसिया के लोग किस बात के लिये कठिन परिश्रम करते हैं, किस बात पर अपना अधिक समय, पैसा और प्रयत्न खर्च करते हैं। लोगों का यह अवलोकन निश्चित करता है कि उन पर उस समूह/कलीसिया की क्या छाप पड़ती है।

2.2 लोगो में यह पहचान या तो सकारात्मक हो सकती है या नकारात्मक। निम्नलिखित कुछ सम्भावित पहचान हैं:–

2.2.1 एक कलीसिया को सुसामाचार प्रचार और आत्माओं को जीतने के केन्द्र के रूप में देखा जाता है, जो निराश लोगों को आशा प्रदान करता है।

2.2.2 कलीसिया एक ऐसे स्थान के रूप में देखी जाती है, जहां परमेश्वर की आराधना होती है, और जहां सदस्यों के मध्य गहरी सहभागिता होती है।

2.2.3 कलीसिया एक ऐसा केन्द्र है जहां अनाथ और विधवाएं और दुखियों के साथ प्रेम का व्यवहार होता है, उन्हे वहां स्वीकार किया जाता है और उनकी देखभाल होती है।

2.3 निम्नलिखित कुछ सम्भावित कारण हैं जिससे आसपास के समुदाय में कलीसिया की नकारात्मक पहचान हो सकती हैः

2.3.1 समूह की पहचान बुरी तरह प्रभावित होती है यदि समूह का अगुवा अपने समय और ऊर्जा को सेवकाई से अधिक स्वंय की बढ़ोतरी के लिये खर्च करता हुआ देखा जाता है।

2.3.2 एक शहर में एक कलीसिया थी, जो अपनी धनराशी बढ़ाने के लिये दान की गई वस्तुओं का वार्षिक रूप से ''बड़ा सेल'' आयोजित करती थी। यह 'सेल' कलीसिया के कैलेन्डर में एक ऐसी बड़ी प्राथमिकता बन गया कि वह वर्ष की एक बड़ी घटना बन गया। इसके परिणामस्वरूप, आसपास के समूह के लोग उस कलीसिया को आत्मिक जीवन और सेवकाई का स्थान न सामझकर आर्थिक व्यापार के स्थान के रूप में देखने लगे।

3. हम मसीहियों को अपनी विविधता का महत्व समझना चाहिये, जो हमारी विभिन्न सेवकाईयों को आकर देने में सहायता करती है।

3.1 मसीही कलीसिया विविधता में एकता की एक पच्चीकारी है।

3.1.1 एक ही प्रभु है, एक ही विश्वास, एक ही बपतिस्मा है। (इफिसियों 4:5)

3.1.2 मसीह में सब एक हैं। (गलतियों 3:28)

3.1.3 तौभी प्रत्येक कलीसिया, अपने सदस्यों की विविधता के कारण, भिन्न है।

3.2 परमेश्वर ने प्रत्येक कलीसिया को जो विभिन्न प्रकार के लोग दिये हैं उन्हें हमें महत्व देना चाहिये।

3.3 हमें अलग–अलग कलीसिया की अलग–अलग प्रकर की सेवकाइयों को, परमेश्वर की संतानों के मध्य की विभिन्न प्रकार की आराधना पद्धतियों को महत्व देना चाहिये क्योकि हम सब उसके पास यीशु के द्वारा ही आते है जो मार्ग, सत्य और जीवन है। (यूहन्ना 14:6)

पाठ 6
महान आदेश के संबंध में कलीसिया का दर्शन –2

4. हम मसीहियों को अपने उन गुणों और मनोवृत्तियों को महत्व देना चाहिये जो हम सब में समान रूप से हैं।

4.1 महान आदेश के संबंध में हमारा दर्शन यीशु और प्रार्थना पर आधारित होना चाहिये।

4.1.1 हमारी एकता, मसीह में प्राप्त परमेश्वर के अनुग्रह और क्षमा पर आधारित है।

4.1.2 उद्धार एक आत्मिक अनुभव है जो पश्चाताप की मांग करता है।

4.1.3 परमेश्वर के वचन के लिये एक नया प्यार और आदर मापदण्ड बन जाता है।

4.1.4 यीशु मसीह के प्रभुत्व के अधिन रहने के लिये सारे विश्वासी उत्सुक होते हैं।

4.1.5 कलीसिया को बढ़ने में सहयक होने के लिये कोई भी ''तिकड़म'' नहीं है।

4.2 हमारा दर्शन ''महान आदेश'' के चारों ओर घुमना चाहिये।

4.2.1 अब और जोर इस बात पर नहीं है कि हमारी कलीसिया के लिये अधिक से अधिक सदस्य हासिल किये जाये।

4.2.2 शिष्यों को प्रशिक्षित किये जाने पर अधिक जोर दिया जाता है।

4.2.3 हम लोगों को मात्र मत बदलने वाले नहीं बनाते, उन्हें शिष्य बनाते हैं।

4.2.4 सुसमाचार प्रचार को दिया जानेवाला महत्व, पवित्रीकरण के महत्व को समाप्त नहीं करता।

4.2.5 कलीसिया अपने सदस्यों की पालने से लेकर कब्र तक देखभाल करती है।

4.3 हमारे दर्शन में इस बात का सम्मान किया जाना चाहिये कि प्रत्येक विश्वासी के पास एक सेवकाई होनी चाहिये।

4.3.1 परमेश्वर ने कलीसिया में वरदान–प्राप्त और कुशल लोगों की टीम को रखा है, उस टीम की भूमिका यह है कि पवित्र लोगों को सेवकाई के लिये सुसज्जित करें। (इफिसियों 4: 12)

4.3.2 मार्टिन लूथर ने अक्सर ''पवित्र लोगों के याजकपन'' के बारे में कहा है । (1 पतरस 2:9)

4.3.3 प्रत्येक मसीही को अपने वरदान को पहचानना चाहिये और उस वरदान के अनुरूप सेवकाई के लिये प्रशिक्षित होना चाहिये।

4.4 जिन लोगों के पास हमें पहुंचना है उनकी अनुभूत आवश्यकताओं के प्रति हमारा दर्शन संवेदनशील होना चाहिये।

4.4.1 यीशु चाहता था कि लोगों के पाप क्षमा किये जायें और वे परमेश्वर पिता के साथ अच्छे सम्बन्ध में रहें; इसी कारण उसने क्रूस पर अपना प्राण दिया । (रोमियो 6: 5–11)

4.4.2 यीशु कभी भी संपूर्ण व्यक्ति के प्रति दया भाव दिखाने से नहीं रूका। उसने बीमारों को चंगा किया, और भूखों की भीड़ को खाना खिलाया।

4.4.3 सुसमाचार दोनों तरीकों से दिया जाना चाहियेः हमारे शब्दों के द्वारा और हमारे सहानुभति, दया और करुणा के कामों के द्वारा भी।

4.4.4 जब कलीसिया लोगों की आवश्यकताओं को पूरी करने का प्रयत्न करती है तब लोग भी उसे ग्रहण करते हैं। (लूका 19:10)

4.5 हमारा दर्शन, मिशन के प्रति और मिशनरियों को बाहर भेजने की ओर केन्द्रित होना चाहिये।

4.5.1 कलीसिया को अपनी गवाही देने की सेवकाई में सक्रिय होना चाहिये। उसे खोए हुए लोगों को खोजने के लिये सारे विश्व में जाना चाहिये।

4.5.2 लोग कलीसिया में आयें इस पर नहीं परंतु कलीसिया लोगों के पास बाहर जाये इस पर जोर दिया गया है (लूका 14:21)।

4.5.3 भीतरी दृष्टि पर नहीं परंतु बाहरी दृष्टि पर जोर दिया गया है (यूहन्ना 20:21)।

4.5.4 हम रविवार को वचन सुनने और धार्मिक अनुष्ठानों के लिये मिलते हैं ताकि सप्ताह भर हम दुनिया के लिये नमक और ज्योति बने रहें।

4.5.5 ''कलीसिया'' समाज में परमेश्वर के लोग हैं; यीशु मसीह के लिये राजदूत है। (2 कुरीन्थियों 5:20)

4.6 हमारा दर्शन हमें सारे विश्व की आत्मिक अवस्था की चिन्ता करने के लिये प्रेरित करें।

4.6.1 इसका दृष्टिकोण वैश्विक है, मात्र स्थानीय नहीं है (मत्ती 24:14)।

4.6.2 बोझ आपस में बांट लिया जाता है; खोए हुओं को ढूंढने के लिये (मत्ती 16:24)

4.6.3 प्रार्थना और आर्थिक योगदान के द्वारा इस वैश्विक दर्शन को सहायता दी जाती है।

4.6.4 परमेश्वर के लोगों चुनौति दी गई है कि परमेश्वर के उद्धार की उद्घोषणा मात्र अपने ही क्षेत्र में नहीं परंतु अन्य क्षेत्रों में भी करें।

पाठ 7

परमेश्वर का मिशन/मनुष्य का उस मिशन में चूक जाना

1. परमेश्वर ने पूरी सृष्टि को रचा, विशेषकर मनुष्य को । (उत्पत्ति 1–3)
   1.1 आरम्भ में कोई पाप नहीं था।
   1.2 परमेश्वर और मनुष्य में कोई अलगाव नहीं था।
   1.3 प्रलोभन यह था कि परमेश्वर से अलग होकर परमेश्वर के समान बने।
   1.4 पुरूष और स्त्री ने अपने विद्रोह के कारण पाप का अविष्कार किया।
2. जब आदम और हवा ने पाप किया तब जगत में मृत्यु ने प्रवेश किया । (उत्पत्ति 2:3)
   2.1 पाप ने पूरी मनुष्यजाति को और सम्पूर्ण सृष्टि को दूषित कर दिया।
   2.2 सारी पीढ़ियों को वंशागत रीति से आत्मिक रोग प्राप्त हुआ।
   2.3 सृष्टि के प्रत्येक जीवित प्राणी में विकार और बिगाड़ और मृत्यु के हर एक प्रकार का प्रवेश हुआ।
3. परमेश्वर ने मनुष्य को एक और अवसर देने का निर्णय किया। (उत्पत्ति 3:9–24)
   3.1 परमेश्वर के पास पुरूष और स्त्री को नष्ट कर देने का विकल्प था।
   3.2 परंतु परमेश्वर प्रेम है और उसके प्यार ने उसे बाध्य किया कि वह मनुष्यों को पाप से छुटकारा दिलाने का एक अवसर दे। (उत्पत्ति 3: 7–24)
4. मनुष्य के विद्रोह करने के बावजूद परमेश्वर उससे प्रेम करता है। (उत्पत्ति 3: 7–24)
   4.1 आदम और हवा ने देखा कि वे नग्न हैं।
   4.2 परमेश्वर ने आदम और हवा की दयनीय अवस्था के बावजूद उन्हें कपड़े दिये। (उत्पत्ति 3: 21)
5. परमेश्वर ने अपने लोगों से एक प्रतिज्ञा की।
   5.1 परमेश्वर ने अब्राहम से कहा कि वह उसके द्वारा सारी जातियों को आशीषित करेगा। (उत्पत्ति 22:18)
   5.2 दाऊद से बातें करते समय उसने प्रतिज्ञा को विस्तार पूर्वक बताया। (2 शमुएल 7:16)

5.3 वह इस्त्राएल लोगों को अपने भविष्यद्वक्ताओं के द्वारा मसीह के विषय में बताता रहा। (यशायाह 7:14)

6. परमेश्वर ने अपने लोगों को मिशनरी की भूमिका में ठहराया (उत्पत्ति 12)

6.1 परमेश्वर और उसके लोग के बीच की वाचा में एक मिशनरी लक्ष्य था। (उत्पत्ति 12:3)

6.1.1 यह वाचा उसके लोगो की आज्ञाकारिता पर निर्भर थी।

6.1.2 शर्त यह थी कि इस्त्राएल को परमेश्वर की यह वाचा अन्य राष्ट्रों के साथ साझा करनी थी। (निर्गमन 19: 5–6)

6.2 इस्त्राएल को अन्य राष्ट्रों के मध्य परमेश्वर को प्रदर्शित करना था।

6.2.1 परमेश्वर ने इस्त्राएल को एक उदाहरण बनाया कि वह उस किसी भी राष्ट्रों को किस प्रकार प्रेम और दया से उत्तर देगा जो उसकी खोज करेगा (यशायाह 36:20, यहोशू 7:9)

6.2.2 इस्त्राएल ने एक मिशनरी राष्ट्र बनने की ईश्वर–प्रदत्त योजना का इन्कार कर दिया। उदाहरण – योना।

6.2.3 मूर्तिपूजक राष्ट्रों से सामना होने पर, इस्त्राएल जाति ने अपनी पवित्रता को खतरे में डाल दिया। उसने उन राष्ट्रों के साथ आत्मिक व्यभिचार किया और उन राष्ट्रों के समान हो गई । उदाहरण – होशे।

6.3 परमेश्वर ने इस्त्राएल को पश्चाताप करने की बुलाहट देने के लिये भविष्यद्वक्ताओं को भेजा।

6.3.1 भविष्यद्वक्ताओं ने इस्त्राएल के लिये एक नये दिन की घोषणा की। (यहजेकेल 36: 26–27, यिर्मयाह 31: 31)

6.3.2 मसीह से संबंधित बातों को बताने वाले भविष्यद्वक्ता अधिक प्रसिद्ध थे।

6.3.3 मसीह को राष्ट्रों को बचाने वाले के रूप में प्रस्तुत किया गया (यशायाह 19:23–25)

6.3.4 भविष्यद्वक्ताओं ने इस्त्राएल को उसकी मिशनरी जिम्मेदारियों के बारे में विस्तार से बताया कि उसे सारे राष्ट्रों को परमेश्वर के समीप लाना है। (यशायाह 55:5, 56:6–8, 66:18–19)

6.3.5 हजार वर्षों के समय के दौरान मसीह सर्वत्र राज्य करेगा। (यशायाह 25:6–8, हबक्कुक 2:14)

6.4 परमेश्वर का मिशन <u>परमेश्वर–केंद्रित</u> है, परंतु इस्त्राएल का मिशन <u>जाति–केंद्रित</u> था। (यहेजकेल 36:22–23)

6.4.1 <u>परमेश्वर–केंद्रित:</u> परमेश्वर अपने निज लोगों से चाहता था कि वे सारे राष्ट्रों में उद्धार लेकर जायें। किन्तु वे इसमें असफल हो गये। (यशायाह 49: 6)

6.4.2 <u>जाति–केंद्रित</u>: इस्त्राएल ने यह समझा कि उसे केवल अपने ही लोगों के बीच जाना है, और वे दूसरे राष्ट्रो तक नहीं पहुंचे। (मत्ती 5:16)

सारांश :–

- इस्त्राएल, परमेश्वर के मिशन को पूरा करने में असफल हुआ।
- परमेश्वर अभी भी कलीसिया को बुला रहा है और उपयोग में ला रहा है कि वह उद्धार को पृथ्वी की छोर तक ले जाये। (प्रेरितों 1:8)

पाठ–8
परमेश्वर की योजना: देहधारण

1. देहधारण: परमेश्वर, यीशु मसीह में देहधारी हुआ (यूहन्ना 1:1,14)।

1.1 मनुष्य को पहले के समान परमेश्वर के साथ के सम्बन्ध में वापस लाने के लिये परमेश्वर को मनुष्य देह धारण करना आवश्यक था।

1.2 यदि परमेश्वर स्वयं नहीं आता तो हमारे सब पापों को दूर किया जाना नहीं हो सकता था।

1.3 यदि परमेश्वर स्वयं नहीं आता तो छुटकारा अनन्तकालिक और सारे जगत के लिये न होता।

2. यीशु के जन्म के समय शान्ति की उद्घोषणा की गई। (लूका 2:14)

2.1 परमेश्वर की शान्ति यह परमेश्वर के साथ के अच्छे सम्बन्ध का परिणाम है।
2.2 यह सम्बन्ध परमेश्वर से पापों की क्षमा प्राप्त करने के बाद आरम्भ होता है।
2.3 यह क्षमा परमेश्वर के पुत्र को स्वीकार करने पर निर्भर होती है।

3. परमेश्वर की शान्ति और क्षमा का दान मनुष्य की समझ से परे है। (2 कुरन्थियों 9:15)
   3.1 परमेश्वर ने अपने पुत्र को अयोग्य लोगों के लिये भेजा।
   3.2 यह परमेश्वर की योजना है मनुष्य की नहीं, क्योंकि मनुष्य ने यह कभी नहीं किया होता।
   3.3 परमेश्वर की उद्धार की योजना सफल होती है, यदि मनुष्य उसका निषेध न करे।

4. यीशु मसीह की सेवकाई मानवीय प्रयास नहीं है।
   4.1 यीशु ने अपनी सेवकाई को बपतिस्मा के द्वारा आरम्भ किया । (यूहन्ना 1:29)
   4.2 यीशु परमेश्वर की दया का प्रतिनिधि होने से बढ़कर है; वह देहरूप में परमेश्वर की दया है। (यूहन्ना 3:16)
   4.3 परमेश्वर के पास पहुंचने के लिये मार्ग मात्र यीशु ही है। (यूहन्ना 10:9, यूहन्ना 14:6, प्रेरितों के काम 4:12)
   4.4 यीशु, छुटकारे की परमेश्वर की योजना का मात्र एक भाग नहीं है, वह देह रूप में परमेश्वर के छुटकारे की योजना है। (रोमियों 5: 1–2, इब्रानियों 7:26–28)

5. मसीह का क्रूस परमेश्वर के प्रेम का सर्वोच्च प्रदर्शन है।
   5.1 जब यीशु ने हमारे पापों को अपने ऊपर लिया तब उसके पिता ने उसे छोड़ दिया। (मत्ती 27:46)
   5.2 पुत्र ने अपने पिता के उस न्याय को सहा जो हमें मिलना था। (रोमियो 5:8)
   5.4 यीशु ने क्रूस पर ठीक प्राण त्यागने के पहले कहा, ''पूरा हुआ''। (यूहन्ना 19:30)
      5.4.1 ग्रीक में मूल शष्द है ''टेटलेस्टाई''। इसका अर्थ ''ऋण चुका दिया गया'' यह भी है।
      5.4.2 इसका अर्थ है कि पापों की क्षमा की योजना पूर्ण हो चुकी है। पूरी बात सम्पन्न हो चुकी है।

6. यीशु मृतकों में से जी उठा। (1 कुरन्थियों 15)
   6.1 यीशु ने शैतान और मृत्यु को पराजित कर दिया।
   6.2 वह हमें मृत्यु के पश्चात् का जीवन प्रदान करता है।
   6.3 वह हमें मृत्यु और शैतान को हराने की सम्भावना प्रदान करता है।
   6.4 जो विश्वास करते हैं उनके पास यीशु आकर उनमें वास करता है।
   6.5 ''मैं'' मर जाता है, और आगे यीशु मुझ में जीवित रहता है। (गलातियों 2:20)

7. यीशु अपने लोगों के मध्य उपस्थित है।
   7.1 यीशु ने अपने शिष्यों के साथ रहने की प्रतिज्ञा की है। (यूहन्ना 28:30)
   7.2 यीशु उसके वचन में उपस्थित है।
   7.3 यीशु उसकी कलीसिया में उपस्थित है।
   7.4 यीशु प्रत्येक विश्वासी की देह में उपस्थित है। (1 कुरन्थियों 3:16, 6:19)

पाठ–9
परमेश्वर की योजनाः संसार में उसके लोग

1. संसार में कलीसिया यीशु का प्रतिबिम्ब है।
   1.1 परमेश्वर की यह इच्छा कि सारी मानवजाति उसे जाने, यह कलीसिया के माध्यम से जारी या कायम रहती है।
   1.2 यीशु, कलीसिया इस देह का सिर है। (कुलुसियों 1:18)

1.3 परमेश्वर के लोग राजा के लिये प्रवक्ता हैं। (इफिसियों 4:15, रोमियो 12:5, 2 कुरन्थियों 5:20)

1.4 जीवित और पुनरुत्थित मसीह अपनी कलीसिया के द्वारा देह धारण किये रहता है।

2. यीशु मसीह की विजय ने परमेश्वर के लोगों को व्यवस्था से छुड़ाया है और उन्हें सुसमाचार सौंपा है।

2.1 जब तक यीशु नहीं आया था तब तक व्यवस्था परमेश्वर के लोगों की शिक्षक थी। (गलातियो 3:19)

2.1.1 व्यवस्था के कामों ने मनुष्य को धर्मी नहीं ठहराया (गलातियों 2:16)

2.1.2 व्यवस्था ने मृत्यु को लाया, जीवन को नहीं (गलातियों 2:19–20)

2.2 सुसमाचार व्यवस्था को पूरा करता है। (रोमियों 10:4)

2.2.1 मसीह ने हमें व्यवस्था के शाप से छुड़ाया। (गलातियों 3:13)

2.2.2 सुसमाचार परमेश्वर की क्षमा को प्रगट करता है।

2.2.3 जो व्यवस्था के द्वारा दंड़ के अधिन हैं उन्हें छुड़ाता है।

2.2.4 यह बात छुड़ाये गये लोगों को प्रेरित करती है कि वे औरों को सुसमाचार सुनाये (1 कुरिंथि 9:16)

2.2.5 यह हमें पाप और मृत्यु पर विजय दिलाता है। (1 यूहन्ना 5:4)

3. यीशु का मिशन उसकी कलीसिया में केन्द्रित है, कलीसिया उसका ईश्वरीय प्रतिनिधि है।

3.1 कलीसिया की प्रकृति को बाइबल में उसके लिये दिये गये शब्दों के द्वारा समझा जाना चाहिये।

3.1.1 ''लाओस'' का अर्थ है ''परमेश्वर के लोग'' – कलीसिया के सारे सदस्य अर्थात् सारे पवित्र लोग (1 पतरस 2: 9–10)

3.1.2 ''क्लेरास'' का अर्थ है परमेश्वर की मिरास को प्राप्त करने वाले लोग – याजकों का समाज, सारे पवित्र लोग (1 पतरस 1: 3–4)

3.1.3 ''कोईनोनिया'' अर्थात् परमेश्वर के लोग जिनके के बीच में ''भाईचारा और आत्मिक मेल'' है। (प्रेरितों 2: 42–46, 1 यूहन्ना 1:3)

3.1.4 ''एक्लेसिया'' अर्थात् ''मंडली – वे लोग जो अलग बुलाए हुए हैं''। (मत्ती 16:18)

3.2 परमेश्वर के लोगों को उसके प्रतिनिधि होना है और उन्हें उसके सुसमाचार को सारे राष्ट्रो में फैलाना है।

3.2.1 हम राजदूत हैं। (2 कुरन्थियों 5:20)

3.2.2 हम खेतों में परमेश्वर के सहकर्मी हैं। (1 कुरन्थियों 3: 8–9)

3.2.3 हम मसीह की मीठी सुगन्ध हैं। (2 कुरन्थियों 2:15)

3.2.4 हम परमेश्वर के द्वारा भेजे गये हैं। (यूहन्ना 20:21)

3.2.5 हम उसके गवाह हैं। (यशायाह 43:10, प्रेरितों 1:8)

पाठ–10
पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से कलीसिया बढ़ती है

1. पिन्तेकुस के दिन कलीसिया का जन्म हुआ । (प्रेरितों 2)

1.1 परमेश्वर के उद्धार की योजना को पूरा करने के लिये शिष्यों में एक नयी सामर्थ्य, एक नया दर्शन, एक नयी समझ, और एक नया समर्पण था।

1.2 पहली शताब्दी की कलीसिया जीवित थी, और तब तक उन्हें फलवन्त न होने वाली परंपराएं, आलसी आदतें और डरे हुये विश्वास जैसी बातें मालूम नहीं थीं (प्रेरितों 8:14)

2. कलीसिया में कमजोरियां थीं।

2.1 कुरिन्थुस के लोग पवित्र आत्मा के वरदानों पर बहुत अधिक जोर देते थे। (1 कुरन्थियो 12:14)

2.2 पहली शताब्दी के अन्त से पहले बहुत सारी कलीसिया फल न देने वाली बन गई थीं। (प्रकाशितवाक्य 2:5)

2.3 दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में ही बहुत सी कलीसियाओं को पुर्नजागरण और फिर से सुधार की आवश्यकता होने लगी थी।

2.4 तब से, हमें पवित्र आत्मा की आवश्यकता है कि हमें परमेश्वर के पास वापस बुलाये, हमें हमारे पापो के कारण दोषी ठहराये, हमें पवित्र आत्मा से भरी हुई पवित्रता और गवाही के लिये अगुवाई दे।

3. पवित्र आत्मा के द्वारा कलीसिया बढ़ती है।
   3.1 परमेश्वर ही है जो लोगों को पश्चाताप और विश्वास करने के लिये अगुवाई देने की पहल करता है।
   3.2 जब कलीसिया पवित्र आत्मा के द्वारा नहीं जी रही है तब निम्नलिखित चिन्ह दिखाई देते हैं–
      3.2.1 वचन के प्रचार को प्राथमिकता नहीं है, और मसीह की आराधना आत्मा और सच्चाई के साथ नहीं होती है।
      3.2.2 कलीसिया एक जीवित इकाई नहीं परंतु एक संगठन बनकर रह गई है।
      3.2.3 वचन का प्रचार लोगों की आत्मिक आवश्यकताओं को संबोधित नहीं करता।
      3.2.4 प्रभु भोज और बपतिस्मा मात्र रीति–रिवाज बनकर रह गये है।
      3.2.5 मसीही लोग अब दर्शक बन रहे हैं, वे स्वयं भाग लेनेवाले आराधक और गवाह नहीं हैं।
      3.2.6 सुसमाचार प्रचार का काम अब केवल पास्टर का कार्य बनता जा रहा है।
      3.2.7 माना जाता है कि बाइबल अध्ययन मात्र सण्डे स्कूल के बच्चों के लिये है।

पाठ–11
परमेश्वर की योजनाः अनुग्रह के साधन

1. ''अनुग्रह के साधन'' वे उपाय हैं जिनके द्वारा परमेश्वर अपने लोगों को प्रेम प्रदान करता है।
   1.1 परमेश्वर का अनुग्रह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी दयालुता, कृपा और पापक्षमा है।
   1.2 हम परमेश्वर के अनुग्रह के उपायों को बाइबल, बपतिस्मा, और प्रभु भोज के द्वारा देखते हैं।
   1.3 उसके अनुग्रह के उपाय हमें बढ़ने के लिये उचित प्रेरणा देते है।
   1.4 कलीसिया, आत्मिक रूप से नये बन गये लोगों के साथ बढ़ेगी। (मत्ती 9:17)

2. बाइबल अनुग्रह का एक साधन है।
   2.1 कलीसिया के द्वारा सुसमाचार प्रचार का उपक्रम किया जाये इसके लिये वचन प्राथमिक स्त्रोत है।
      2.1.1 जहां परमेश्वर के वचन का प्रचार किया जाता है वहां कलीसिया बढ़ती है।
      2.1.2 गैर विश्वासियों के मध्य यीशु की गवाही बाइबल से दी जाने की आवश्यकता होती है, ना कि किसी सम्प्रदाय, इमारत, कार्यक्रम या गतिविधि से।
      2.1.3 कलीसिया का आगे बढ़ते जाना तब बहुत प्रामाणिक और प्रभावी होता है जब वह बाइबल पर आधारित होता है।
   2.2 कलीसिया के भीतर की शिष्यता का प्राथमिक स्त्रोत वचन है।
      2.2.1 जब लोग बाइबल का अध्ययन करते है तब वे विश्वास और परिपक्वता में बढ़ते जाते हैं।
      2.2.2 पिछड़ जाने वालों के लिये आवश्यक होता है कि वे मनुष्यों के तर्क या कलीसिया में जाने की आवश्यकता के बारे में नहीं परंतु 'परमेश्वर उनकी चिंता करता है' इसके बारे में अधिक सुनें।
      2.2.3 जब व्यक्ति परमेश्वर के वचन में बना रहता है, तब वह सांसारिक अभिलाषाओं से दूर रहता है। (फिलिप्पियों 2:16)
      2.2.4 बढ़ती हुई कलीसिया का गुण होता है कि वह वचन में वृद्धि करती जाती है। (मत्ती 28:20)
3. बपतिस्मा अनुग्रह का एक उपाय है।
   3.1 कलीसिया की बाहरी रूप से होने वाली वृद्धि बपतिस्मा के आश्चर्यकर्म पर निर्भर होती है।
      3.1.1 नये शिष्य बनाने के लिये बपतिस्मा एक आवश्यक तत्व है। (मत्ती 28:19)
      3.1.2 बाइबल कहती है, ''मन फिराओ और बपतिस्मा लो'' (प्रेरितों 2:38)
   3.2 कलीसिया की आन्तरिक वृद्धि बपतिस्मा के आश्चर्यकर्म पर निर्भर होती है।

3.2.1 प्रत्येक बार जब नया विश्वासी बपतिस्मा लेता है, तब पवित्र लोग अपने बपतिस्मा को याद करते हैं।

3.2.2 जब पवित्र लोग अपने मन फिराव और समर्पण को याद करते है, तब वे नई शक्ति पाते हैं।

3.2.3 जब पवित्र लोग अपने बपतिस्मा के समय हुये पवित्र आत्मा के कार्य को स्मरण करते हैं, तब वे शैतान का सामना बेहतर तरीके से करते हैं।

3.2.4 बपतिस्मा कलीसिया के भीतर एकता और सहभागिता बढ़ाने में योगदान देता है। (रोमियो 12: 4–5, इफिसियों 4:5)

4. प्रभु भोज अनुग्रह का एक उपाय है।

4.1 प्रत्येक बार जब विश्वासी प्रभु भोज में सहभागी होता है, वह यीशु और उसके महान आदेश के प्रति अपना विश्वास का समर्पण सुनिश्चित करता है।

4.2 प्रभु भोज, क्षमादान और परमेश्वर के लोगों के नये हो जाने को प्रदर्शित करता है।

4.3 प्रभु भोज, मिशन और सेवकाई को परमेश्वर के दृष्टिकोण में रखता है। (1 कुरन्थियों 11:26)

4.4 प्रभु भोज, पापी का परमेश्वर के मिशन में सहभागी होना प्रदर्शित करता है।

4.5 परमेश्वर पिता अपना कार्य करने के लिये दोषी परंतु क्षमा पाए हुए लोगों का स्वागत करता है।

4.6 प्रभु भोज में सम्मिलित होना व्यक्तिगत रीति से एक–एक व्यक्ति का तथा एकसाथ किया जाने वाला सामूहिक कार्य भी होता है।

पाठ–12
कलीसिया के रूपकः जीवित बनावट –1

1. कलीसिया परमेश्वर का मन्दिर हैः

1.1 परमेश्वर का मन्दिर वह स्थान है जहां परमेश्वर निवास करता हैं। (1 कुरिंथियों 3:16, 2 कुलुस्सियों 6:16)

1.1.1 पवित्र आत्मा उन में वास करता है जिनसे मिलकर परमेश्वर की कलीसिया बनती है।

1.1.2 पवित्र आत्मा उसके मन्दिर के जीवित पत्थरों में रहता है। (इफिसि. 2:22, 1 पतरस 2:5)

1.1.3 जीवित पत्थर (हमारी आत्माएं) नष्ट नहीं किये जा सकते हैं। (यूहन्ना 3:16, मत्ती 25:46)

1.2 कलीसिया की नींव जीवित हैः वह यीशु मसीह है। (इफिसियों 2:20, 2 पतरस 2:7)

1.2.1 प्रेरित और भविष्यद्वक्ता इस नींव के भाग हैं। (इफिसियों 2:20)

1.2.2 मसीही लोग इस इमारत के भाग हैं। (इफिसियों 2:21)

1.3 परमेश्वर कलीसिया का प्रभु (स्वामी) है। (1 कुरिन्थियों 3: 6–9)

1.3.1 परमेश्वर अपनी कलीसिया को बढ़ाता है। (1 कुरिन्थियों 3: 6–7)

1.3.2 मसीही लोग कलीसिया के निर्माण में कार्य करते है। (1 कुरिन्थियों 6:8)

1.3.3 मसीही कार्यकर्ता कार्यस्थल का प्रतिनिधित्व करते है। (1 कुरिन्थियों 3:9)

2. कलीसिया परमेश्वर का परिवार (परमेश्वर का घर) है।

2.1 यह रूपक मन्दिर से सम्बन्धित है। (इफिसियों 2: 18–20)

2.2 यह परिवार संयुक्त है। (इफिसियों 2:18)

2.3 मसीही लोग अब परमेश्वर के लिये अजनबी नहीं हैं। (इफिसियों 2:19)

2.4 परमेश्वर अपनी संतानों का पिता है। (मत्ती 23:9; यूहन्ना 1:12; गलातियों 4: 4–7)

2.5 संतान पिता के पास स्वतंत्रता के साथ पहुंच सकते हैं। (इफिसियों 2:18, 3:12)

2.6 परमेश्वर का घर जीवित परमेश्वर की कलीसिया है। (1 तिमोथी 3:15)

2.7 सारे पवित्र लोग हमारे भाईबन्धु हैं। (1 पतरस 2:17, 5–9)

2.8 परमेश्वर के परिवार में हमारी सदस्यता मात्र यीशु पर निर्भर करती है। (इब्रानियों 2: 10–18)

3. कलीसिया परमेश्वर का झुण्ड है।
   3.1 यीशु ने घोषणा की कि वह इस्त्राएल की खोई हुई भेड़ों के पास आया था। (इफिसियों 2:20)
   3.2 यीशु हमारा चरवाहा है क्योंकि उसने अपनी भेड़ों को छुटकारा दिलाने के लिये अपना प्राण दिया। (तीतुस 2:14)
   3.3 परमेश्वर के लोग उसकी भेड़ें हैं, परमेश्वर का नया इस्त्राएल हैं। (गलातियो 6:16)
   3.4 यीशु ने कहा कि जो उसके पीछे चलते हैं वे उसकी भेड़ें हैं। (यूहन्ना 10:4)
      3.4.1 अच्छी भेड़ें चरवाहे के पीछे चलती हैं और अनन्त जीवन प्राप्त करेंगी। (यूहन्ना 10: 10–28)
      3.4.2 अवश्य है कि यीशु के शिष्य स्वयं का इन्कार करें, अपना क्रूस उठाकर उसके पीछे चलें। (मरकुस 8: 34–35)
      3.4.3 अवश्य है कि जो उसके पीछे चलते है, उन्हे खोए हुए लोगों के लिये बोझ हो। (1 कुरिन्थियों 9:16)
      3.4.4 यीशु ने अपने शिष्यों से कहा कि वे उसके पीछे चलें और मनुष्यों के मछुआरे बनें। (मत्ती 4:19)
   3.5 अवश्य है कि चरवाहा अपने झुण्ड को खिलाये और उसकी रक्षा करे। (प्रेरितों 20:18; 1 पतरस 5: 3–4)
   3.6 यीशु अपने लोगो को सुसज्जित करेगा ताकि वे उसकी इच्छा पूरी करें। (इब्रानियों 13: 20–21)
   3.7 जिन्हें परमेश्वर अपनी सम्पत्ति के रूप में चुनता हैं वे उसके लोग होते हैं। (1 पतरस 2:9; प्रकाशितवाक्य 21:3)
   3.8 परमेश्वर के लोगों के पास महान आदेश है कि वे सब अन्यजातीय समूहों के पास यीशु मसीह के सुसमाचार को लेकर पहुंचे । (प्रकाशितवाक्य 5:9–10)

पाठ–13
कलीसिया के रूपकः जीवित बनावट –2

4. कलीसिया परमेश्वर के याजकों का समाज है। (1 पतरस 2: 9–10)
   4.1 सारे ही विश्वासी राजपदधारी याजकों के समाज का भाग बनते हैं।
      4.1.1 परमेश्वर अपनी संतानों को दूसरों की सेवकाई करने की भूमिका में स्थापित करता है।
      4.1.2 सब ही संत हैं क्योंकि वे सब ही उसकी सेवकाई के लिये अलग किये गये हैं।
      4.1.3 सब ही राजपदधारी हैं क्योंकि वे राजाओं के राजा से संबंधित हैं।
      4.1.4 याजकों का समाज परमेश्वर की सेवा करता है, उसके आश्चर्य कर्मों की घोषणा करता है, उसकी इच्छा पूर्ण करता है, उसकी महिमा करता है ...
   4.2 पापों की क्षमा प्राप्त होना ही परमेश्वर के लोगों को राजपदधारी याजकों का समाज बनने की अनुमति देता है। (प्रकाशितवाक्य 5:10)
   4.3 याजकों का समाज बनने वाले लोग सारी जातियों और राष्ट्रों से आते हैं। (प्रकाशितवाक्य 5:10)

5. कलीसिया दाख की बारी है। (यूहन्ना 15:18)
   5.1 यीशु से जुड़े रहना ही शिष्यता की कुंजी है। (यूहन्ना 15:4)
   5.2 यीशु ने घोषणा की है कि वह दाखलता है और विश्वासी डालियां हैं। (यूहन्ना 15:5)
   5.3 परमेश्वर उन फलों में रूचि रखता है जो डालियां उत्पन्न करती हैं। (यूहन्ना 15:5)
   5.4 दाख की बारी के सारे भंड़ारियों को हिसाब देना होगा। (यूहन्ना 15:6)
   5.5 जो फलवन्त होते हैं वे परमेश्वर की महिमा करते हैं। (यूहन्ना 15:8)
   5.6 यीशु ऐसे फल की इच्छा रखता है जो अन्नतकाल तक बना रहेगा। (यूहन्ना 15:16)
   5.7 सारे स्त्रोत परमेश्वर के हैं, किन्तु वे उसके भंड़ारियों को दिये गये हैं ताकि वे उन्हें उसके आदर और महिमा के लिये काम में लायें। (यूहन्ना 15:8)

6. कलीसिया यीशु की दुल्हन है। (मत्ती 25:6–13)
   6.1 परमेश्वर के लोगों के लिये प्रतिज्ञा किया गया दूल्हा यीशु है। (1 कुरिन्थियो 11:2)
   6.2 विवाह भोज के समय उसके वापस आने की प्रतीक्षा न करने वाले निकाल दिये जायेंगे। (मत्ती 25:12)
   6.3 कलीसिया को मसीह के वापस आने के लिये तैयार रहना और योजना बनाना चाहिये। (मत्ती 25: 1–13)
   6.4 अवश्य है कि हम अपना पहला प्रेम न भूलें। (प्रकाशितवाक्य 2: 4–5)

7. कलीसिया मसीह की देह है।
   7.1 यीशु वह सिर है जो सब कुछ नियन्त्रित करता है। (इफिसियों 1:22, 5:15, कुलुस्सियों 1:18)
   7.2 कलीसिया संसार में मसीह की देह है।
   7.3 प्रत्येक विश्वासी उस देह का सदस्य है।
   7.4 देह की एकता में भी बहुत विभिन्ता है। (रोमियो 12:4, 1 कुरिन्थियों 12:27, इफिसियो 4:11)
   7.5 कलीसिया तब स्वयं को प्रेम में उन्नति करती है, जब प्रत्येक सदस्य उसको प्रदान की गई सामर्थ्य से सब के साथ मिलकर सामंजस्य तरीके से कार्य करता है। (इफिसियों 4:16)

पाठ–14
परमेश्वर का मिशन : सुसमाचार–प्रचार का विवरण

1. सुसमाचार–प्रचार के तीन घटकः–
   1.1 उपस्थिति :– ''हम अविश्वासियों के साथ रहते हुए प्रचार करते हैं''
      1.1.1 बहुत सी कलीसियाएं हैं जो अच्छे कार्य और अविश्वासियों के साथ जुड़े रहने की आवश्यकता को महत्व देती हैं ताकि उनकी प्रतिदिन की समस्याओं में सहायता करें और उनकी शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये कुछ करें।
      1.1.2 वे कहते हैं, ''हम अपने अच्छे कार्यों के द्वारा सुसमाचार का प्रसार करते है।'' (इफिसियो 2:10)
      1.13 यह सुसमाचार प्रसार का एक घटक है, जो अपने आप में पूर्ण नहीं है।
   1.2 उद्घोषणा :– कुछ कलीसियाएं वचन की घोषणा करती हैं और सोचती है कि इतना पर्याप्त है।
      1.2.1 कुछ कलीसियाएं हैं जो अविश्वासियों के बीच अपनी उपस्थिति का समर्थन करती हैं, परन्तु वे परिणाम की चिन्ता किये बिना सुसमाचार के प्रचार को महत्व देती हैं।
      1.2.2 वे कहती हैं, ''हम उद्घोषणा के द्वारा सुसमाचार फैलाते हैं, चाहे लोगो की रूचि इसमें हो या न हो।'' (फिलिप्पियों 1:18)
      1.2.3 यह सुसमाचार प्रचार का दूसरा घटक है, परन्तु यह सुसमाचार का प्रचार नहीं है। परिभाषा अभी भी अधूरी है।
   1.3 उत्तर के लिये राजी करना – कुछ कलीसियाएं सुसमाचार के प्रचार को इस तरह परिभाषित करती हैं कि यह अविश्वासियों के बीच उपस्थित रहना, सुसमाचार की उद्घोषणा करना और उन्हें उत्तर देने के लिये राजी करना है।
      1.3.1 कुछ कलीसियाएं हैं जो अपनी उपस्थिति और अपने द्वारा होने वाली उद्घोषणा के महत्व को ऊंचा उठाती हैं, परन्तु वे इस बात पर भी जोर देती हैं कि सुसमाचार प्रचार को स्पष्ट किये जाने के बाद यह भी प्रयास करना चाहिये कि अविश्वासी मसीह को स्वीकार करें।
      1.3.2 ''हम सुसमाचार का प्रचार अविश्वासियों के बीच में जाने के द्वारा और सुसमाचार की उद्घोषणा इस उद्देश्य से करने के द्वारा करते हैं कि सुनने वाले संसार को छोड़कर परमेश्वर के पीछे चलना आरंभ करें।''

1.3.3 कुछ कलीसियाएं हैं जो न केवल उपस्थिति और उद्घोषणा की मुख्यता को ऊंचा उठाती है, परन्तु वे तीसरे घटक को भी जोड़ती हैं जो कि उत्तर के लिये राजी करना, या सहमत करना है। यह परिभाषा बाइबल की समझ के अनुसार ''सुसमाचार प्रसार'' इस शब्द के अधिक समीप है।

2. सुसमाचार प्रचार की कार्यकारी परिभाषा :–
सुसमाचार प्रचार करना, सुसमाचार को इस तरह से प्रस्तुत करना है कि अविश्वासी के लिये एक ऐसा वैध सुअवसर प्रस्तुत किया जाये जिसके कारण वह यीशु मसीह को अपना उद्धारकर्ता और प्रभु मानकर ग्रहण करे।

3. कलीसिया का इस जगत में ''परम्परागत स्थान'' – मत्ती 28:19–20, रोमियों 10:9
   3.1 'परम्परागत्' अर्थात् ऐतिहासिक, अतः कलीसिया का परम्परागत् स्थान वह है जो इतिहास में एक लम्बे समय से बना हुआ है।
   3.2 इस पद को निम्नलिखित तरीके से बताया जा सकता है, ''यीशु मसीह के सुसमाचार की घोषणा पूरे विश्व में करना ताकि लोग उसमें विश्वास करें और छुटकारा पाएं।''
   3.3 अतः मिशन को इन शब्दों मे समझा गया हैः ''सुसमाचार का प्रचार करो।''
   3.4 जोर इस बात पर है कि व्यक्ति की आत्मा का परिवर्तन हो और कलीसिया में उसका विकास किया जाये।
   3.5 संसार में कलीसिया का यह स्थान या पद 'सुसमाचार–प्रचारीय आदेश' कहलाता है।

4. कलीसिया का इक्युमेनिकल स्थानः मत्ती 22:37–39
   4.1 इक्युमेनिकल अर्थात् 'विश्वभर में एकता–वर्धक,'' अतः कलीसिया के इक्युमेनिकल स्थान में संसार की कलीसियाओं के एकता–वर्धक संरचना पर जोर दिया जाता है। कलीसिया के संबंध में यह स्थान या पद 20 वीं शताब्दी में आरम्भ किया गया।
   4.2 इस अवस्था को यूं बताया जा सकता हैः ''हमें सामाजिक सामंजस्य के भाव से शान्ति स्थापित करना चाहिये।''
   4.1 अतः यह स्थिति इस तरह से परिभाषित की जा सकती हैः ''हमें सामाजिक सामंजस्य के लिये शान्ति स्थापित करना चाहिये।
   4.2 इस ''शांति'' को ''परमेश्वर के राज्य'' के समानार्थक माना गया।
   4.3 अतः इसके अनुसार, मिशन को समाज के नवीनीकरण के लिये की जाने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया माना गया।
      4.4.1 उद्योगों के अंदर के भेदभाव का समाधान करना।
      4.4.2 ग्रामीण विकास के लिये विभिन्न प्रयास करना।
      4.4.3 जातीय और सामाजिक स्तर पर होने वाले सारे भेदभाव का परित्याग करना।
   4.5 इस में, सामाजिक गतिविधि और वर्तमान जीवन के विकास पर अधिक जोर दिया गया है।
   4.6 कलीसिया के संबंध में इस स्थान या पद को सांस्कृतिक आदेश (या सामाजिक आदेश या सामाजिक सुसमाचार) कहा गया है।

5. बाइबल के अनुसार संश्लेषणः (यूहन्ना 20:21)
   5.1 सामाजिक कार्य (अपने पड़ोसी से प्रेम कर) और सुसमाचार का प्रचार (शिष्य बनाना) ये परमेश्वर के मिशन में बराबर के सहयोगी हैं।
   5.2 मिशन इन दोनों बातों को सम्मिलित करता हैः कार्य और शाब्दिक गवाही।
   5.3 एक आदेश को दूसरे से अलग कर देने के पक्ष में बाइबल का कोई समर्थन नहीं है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और पृथक नहीं किये जा सकते हैं।

पाठ–15
परमेश्वर का मिशन : सर्वसमावेशी सुसमाचार–प्रचार

1. परमेश्वर की योजना में पुनरुत्पादक गुणात्मक वृद्धि सम्मिलित है। (उत्पत्ति 1:28)
   1.1 यह सर्व प्रकार के जीवन के लिये निरन्तरता की कुंजी है।

1.2 यह कलीसिया के लिये जीवित रहने की कुंजी है।

2. सुसमाचार–प्रचार यह परमेश्वर की पुनरुत्पादन की प्रक्रिया है।
   2.1 यह परमेश्वर के द्वारा मसीहत के विस्तार के लिये ठहराई गई विधि है।
   2.2 बाइबल के अनुसार सुसमाचार–प्रचार सर्वसमावेशी, सब को सम्मिलित करने वाला, और समग्र है।
      2.2.1 यह मात्र कमेटी की जिम्मेवारी या पास्टर का कार्य नहीं है।
      2.2.2 यह मात्र एक विशेष कार्यक्रम या एक मासिक योजना नहीं हैं।
      2.2.3 यह कलीसिया का वास्तविक जीवन है, एक ऐसी कार्यविधि जिसके द्वारा अन्य लोग जीवन प्राप्त करते हैं और यीशु मसीह के साथ रिश्ता आरम्भ करते हैं।

3. सुसमाचार–प्रचार कलीसिया के गुणात्मक और संख्यात्मक वृद्धि के लिये आवश्यक है।
   3.1 ये दोनों प्रकार की वृद्धि एक साथ होती हैं, और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता ।
   3.2 संख्यात्मक वृद्धि बाहर से अंदर की ओर होती है (इसे बाह्य वृद्धि भी कहते हैं)।
      3.2.1 सुसमाचार–प्रचार के द्वारा बाहर के लोग परमेश्वर के राज्य–परिवार में प्रवेश करते हैं।
      3.2.2 पवित्र आत्मा मसीहियों को उपयोग में लाता है कि गैर मसीहियों के लिये सुसमाचार–प्रचार करें।
      3.2.3 पवित्र आत्मा सुनने वालो कों प्रेरित करता है कि वे सुसमाचार के प्रति उत्तर दें और यीशु को अपना उद्धारकर्ता और प्रभु ग्रहण करें।
      3.2.4 नये विश्वासी बपतिस्मा लेते हैं और कलीसिया में समाविष्ट किये जाते हैं।
      3.2.5 नये विश्वासी कलीसिया की शिक्षा में बढ़ते हैं।
      3.2.6 परिणामस्वरूप, सभा में संख्या बढ़ती है। यह बाह्य वृद्धि है।
   3.3 गुणात्मक विकास भीतर से बाहर की ओर होनेवाली वृद्धि है। (इसे आंतरिक वृद्धि भी कहते हैं।)
      3.3.1 यदि कलीसिया के पवित्र लोग समर्पित हैं कि कलीसिया की बाहरी वृद्धि के आदेश का पालन करेंगे तो कलीसिया की आंतरिक वृद्धि स्वाभाविक रूप से होगी ही।
      3.3.2 कलीसिया के बहुतेरे लोग ऐसे होते हैं जो सुसमाचार तब तक समझते नहीं है जब तक उसे औरों के साथ बांटते नहीं हैं।
      3.3.3 सुसमाचार की उद्घोषणा करने का अनुशासन कलीसिया के सदस्य के लिये यह संभव होने देता है कि वह उसे अपने व्यक्तिगत जीवन के अन्य क्षेत्रों भी लागू करे।
      3.3.4 वे जो अपने विश्वास को बांटते हैं वे वचन की ओर अधिकाधिक आकर्षित होते जाते हैं।
      3.3.5 वे जो सुसमाचार का प्रचार करते हैं वे तब पवित्र आत्मा की सामर्थ्य का अनुभव करते हैं जब वह उन्हें यीशु मसीह के राजदूत बनाता है। (मत्ती 10:19–20, 28:18–20)
      3.3.6 फसल काटने वालों का कार्य पूरी कलीसिया को उन्नत करता है। (यूहन्ना 4:3–5)
         3.3.6.1 कार्यकर्ता अपने कार्य–क्षेत्र में जितना अधिक परिश्रम करता है, उतना ही अधिक वह सुदृढ़ होता जाता है, और उसे अपने प्रयासों का अधिक फल मिलेगा।
         3.3.6.2 परमेश्वर खेत देता है, मिट्टी, बीज, सूर्य, वर्षा और जीवन भी देता है, परन्तु अवश्य है कि कार्यकर्ता खेत में कार्य करें, अन्यथा फसल नहीं उगेगी।

पाठ–16
परमेश्वर का मिशनः महान आदेश का अगुवा

1. महान आदेश के अगुवे के कर्तव्यः–
   1.1 अगुवे को पहचानना चाहिये कि मात्र परमेश्वर ही आत्मिक जीवन देता है।
   1.2 अगुवे को ऐसा होना चाहिये कि वह अपने लोगों, परिवारों और कलीसियाओं की सहायता करे कि वे अपने विश्वास, गवाही और संख्या में बढ़ेंगे।
   1.3 अगुवे को निरन्तर उन बाधाओं को दूर करते रहना चाहिये जो पवित्र आत्मा को परमेश्वर के उस महान आदेश पूरा करने से रोकती हैं जो सारे जातियों के लोगों को शिष्य बनाने का है।
2. महान आदेश के अगुवे के आवश्यक गुणः
   2.1 वह महान आदेश की सेवकाई में सहभागी होना चाहता है। (यूहन्ना 4:34–35, प्रेरितों 4:19–20)

2.2 वह परमेश्वर के राज्य के लिये कीमत चुकाने के लिये तैयार होता है। (2 कुरन्थियों 11:24–28)

2.2.1 अपना समय खर्च करने तैयार रहता है।

2.2.2 अपना धन खर्च करने तैयार रहता है।

2.2.3 अपनी शक्ति और श्रम खर्च करने तैयार रहता है।

2.3 वह एक सेवक–अगुवा होता है।

2.3.1 सेवक–अगुवाई यीशु के जीवन पर आधारित है जिसने अपने शिष्यों के पैर धोये। (यूहन्ना 13:2–5)

2.3.2 यीशु ने कहा, ''वरन् जो तुम में बड़ा है, वह छोटे के समान और जो प्रधान है वह सेवक के समान बने। (लूका 22:26)

2.3.3 सेवक अगुवे ''सेवा को अपने से ऊपर'' रखते हैं। वे परिवर्तनकारी सेवकाई चाहते हैं, वे विश्वसनीय सम्बन्ध बनाते हैं, वे इस बात में सहायक बनते हैं कि लोग परमेश्वर को पा लें, और वे मनुष्यों का नहीं परंतु परमेश्वर का समर्थन पाने के लिये जीते हैं।

2.4 वह परमेश्वर के वचन का बहुत बड़ा आदर करता है। (भजन संहिता 119:140)

2.5 वह पवित्र आत्मा में, उसकी अगुवाई और सामर्थ्य के लिये विश्वास करता है। वह बार–बार प्रार्थना करता है।

2.6 वह समय से पहले दूरगामी उद्देश्यों की योजना बनाता हैः वह परिवर्तन का कर्ता होता है।

2.7 वह दूरदर्शी होता हैः वह कलीसिया के लिये नई सम्भावनाओं की कल्पना करता है। (नीतिवचन 19:18)

2.8 वह व्यक्तियों को कार्यभार सौंपना जानता है, कार्य की पूर्णता देखने की इच्छा से प्रेरित रहता है, और कलीसिया के लोगों को कलीसिया की प्रगति के लिये गतिमान करता है।

2.9 जब वह कार्यभार सौंपता है तब जिन्हें जिम्मेदारी देता है उनका दमन नहीं करताः वह अपने शिष्यों का निरीक्षण करता है, किन्तु बहुत पास से नहीं। (उदाहरणः यीशुने 70 लोगो को भेजा) । (मत्ती 10, लूका 10)

2.10 वह पवित्र आत्मा पर और दूसरों पर अपनी निर्भरता को विकसित करता है।

2.11 वह जानता है कि सेवकाई में जितना महत्वपूर्ण अनुभव होता है, उतना ही महत्वपूर्ण वरदान होता है।

2.12 वह ''खिलाड़ी/प्रशिक्षक'' होता हैः वह बहुतेरी सेवकाइयों में भाग लेता है (खिलाड़ी होता है); कभी वह सेवकाई में दूसरों की अगुवाई करता है (प्रशिक्षक होता है); और कभी दूसरे अवसरों पर वह अपने शिष्यों का अवलोकन करता हैं ताकि उन्हें सिखा सके और उत्साहित कर सके। (इफिसियों 4:11–12)

2.13 वह जानता है कि उसकी मुख्य भूमिका दूसरों को सेवकाई के लिये सुसज्जित करना है।

2.14 वह अपने आप को स्थानांतरित कर लेता हैः किसी एक को प्रशिक्षित करके वहां से चला जाता है कि और भी लोगों को प्रशिक्षित करे।

2.15 वह अपने आत्मिक वरदानों की निरन्तर खोज करता रहता है, और उन्हें उपयोग में लाता है। (रोमियो 12:1–3)

2.16 वह दूसरे अगुवों से भी सीखता है कि खोए हुए लोगों तक उत्तम तरीके से कैसे पहुंचा जाये।

2.17 वह विश्वासियों को कार्यरत् रखते हुए उन्हें प्रशिक्षित करता हैः वह चाहता है कि लोग अपने वरदानों को खोजें, उन्हें विकसित करें, और उनका उपयोग करें।

2.18 वह कलीसिया को निरन्तर स्मरण दिलाता है कि सुसमाचार–प्रचार का उद्देश्य शिष्य बनाना है।

2.19 वह लोगों को उत्साहित करता है कि विभिन्न सभाओं में सहायता करें जिससे उनके आत्मिक विकास में सहायता होगी।

2.20 वह निंरतर उन बातों को पढ़ता और सीखता रहता है जो परमेश्वर के बारे में, और परमेश्वर के प्रेम के साथ खोए हुए लोगों तक पहुंचने के बारे में होती हैं।

पाठ–17
स्वदेशी नेतृत्व का प्रशिक्षण – 1[1]

परिचयः

यीशु ने अपने शिष्यों को (अर्थात् हमें) ''चेले बनाओ'' यह निर्देश दिया है। शिष्य बनाना यह प्रशिक्षण देना है, और प्रशिक्षण यह देना है कि मसीही स्त्री–पुरुषों को ऐसे अगुवे बनाया जाये कि वे और भी दूसरे लोगों को शिष्य बनायेंगे।

1. कलीसिया रोपण और कलीसिया वृद्धि के लिये नेतृत्व बढ़ाने में असफल होने के तीन कारण हैं (डाक्टर लोईस मैकिने के अनुसार):
   - 1.1 व्यावसायिक पास्टरों पर अत्याधिक भरोसा रहा है।
   - 1.2 आवासीय सेमिनरियों पर अत्याधिक भरोसा रहा है।
   - 1.3 विदेशों (पश्चिमी देशों) से लिये गये मानकों (प्रशिक्षण के तरीकों) पर अत्याधिक भरोसा रहा है।
   - 1.4 ईश्वरविज्ञान महाविद्यालयों और सेमिनरियों के द्वारा दिये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों का, उनकी स्थानीय आवश्यकता के प्रकाश में, जब भी आवश्यक हो तब परीक्षण किया जाना चाहिये।
2. नेतृत्व प्रशिक्षण के मूलभूत सिद्धान्तः
   - 2.2 सही लोगों को प्रशिक्षित किया जाये।
   - 2.2 उनकी सहायता करें कि वे कार्य को करें, ना कि मात्र परिक्षा में उत्तीर्ण हों।
   - 2.3 जितना सम्भव हो सके उतना कम खर्चीला और साधारण रहें।
3. नेतृत्व के लिये स्थानीय लोगों को प्रशिक्षित करने का महत्वः
   - 3.1 कलीसिया रोपण करने वाले के लिये यह लुभाव होता है कि नयी स्थापित की गई कलीसिया में बाहर से अगुवे लाये जायें। इस लुभाव को रोकना चाहिये। उसे स्थानीय लोगों को नेतृत्व में विकासित करने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।
   - 3.2 मिशनरी को निरन्तर सतर्क रहना चाहिये कि नये विश्वासियों में नेतृत्व की क्षमताओं को खोजे, भविष्य के लिये सावधानीपूर्वक अगुवों का चुनाव करे, और उन्हें लम्बे समय तक एक सुव्यवस्थित प्रशिक्षण दे।
   - 3.3 नयी कलीसिया बनना आरंभ होने के समय से ही लगातार और स्थायी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। उसी प्रकार से, समय–समय पर वरिष्ठ अगुवों के लिये उच्च स्तर का प्रशिक्षण भी आयोजित किया जाना चाहिये। यद्यपि समूह में प्रारम्भिक प्रशिक्षण सभी रूचि रखने वालों को दिया जाना चाहिये, तथापि उच्च स्तरीय और विशेष प्रशिक्षण विशिष्ठ सेवकाई के लिये दिया जाना चाहिये, जैसे कि बच्चों के मध्य कार्य, जवानों के कार्य, महिलाओं के कार्य, पास्टर के कार्य और सुसमाचार–प्रचार के कार्य।
   - 3.4 जन–साधारण में से लिये गये अगुवे, सुसमाचार–प्रचार और कलीसिया रोपण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, और उन्हें लगातार प्रशिक्षित और विकसित करते जाना चाहिये।
   - 3.5 अभिषिक्त लोगों को प्रशिक्षित करने का महत्वः सभी कलीसियाएं किसी–न–किसी रूप में अगुवों को अभिषिक्त करने का, या उन्हें मान्यता देने का, तरीका अपनाती हैं ताकि वे स्थानीय कलीसिया में नेतृत्व की निश्चित जिम्मेदारियों पूर्ण कर सकें। स्थानीय कलीसिया में, उचित रीति से कार्य होने के लिये मान्यता–प्राप्त या प्रमाण–पत्र–प्राप्त अगुवों की आवश्यकता होती है।
4. स्थानीय कलीसिया के लिये नेतृत्व के तीन स्तरः–
   - 4.1 पहला स्तर : कलीसिया के प्राचीन (बुजुर्ग) और डीकनः ये ऐसे पुरूष और महिलाएं होनी चाहिये जो आयु तथा अनुभव में परिपक्व हो। वे स्थानीय विश्वासी समूह के सदस्यों के द्वारा, और यदि संभव है तो समुदाय के द्वारा भी, पहचाने और स्वीकृत किये गये होने चाहिये।
     - 4.1.1 स्थानीय कलीसिया के प्राचीनों का उपयोग आराधना चलाने में, प्रार्थना सभाओं को चलाने में, बीमारों को भेंट करने में, सदस्यों की अनुशासन सम्बन्धी समस्याओं को निपटाने में, विश्वास में पीछे हट जाने वालो को सलाह–परामर्श देने में किया जाना चाहिये।
     - 4.1.2 मसीही कार्यकर्ताओं को ऐसे कार्य करने के लिये कलीसिया के बुजुर्गों का उपयोग करने से हिचकिचाना नहीं चाहिये।

4.2 दूसरा स्तर : सुसमाचार प्रचारक और कलीसिया रोपण करने वालेः ये लोग स्थानीय कलीसिया के सदस्यों में से ही होते हैं, परंतु मुख्य रूप से सुसमाचार प्रचार और कलीसिया रोपण के लिये प्रशिक्षित किये जाते हैं।

4.2.1 सुसमाचार प्रचार और कलीसिया रोपण करने वालों को पूर्णकालिक काम करने वाले कार्यकर्ता की तरह पूरी सहायता दी जाती है।

4.2.2 वे अभिषिक्त नहीं होते हैं, और उनका अभिषेक नहीं किया जाना चाहिये। (अभिषेक कर दिए जाने पर वे अपनी सेवकाई को कलीसिया तक ही सीमित कर लेंगे।)

4.3 तीसरा स्तर : पास्टर और निरीक्षक : ये आत्मिक रूप से मसीही अनुभव में, बाइबल के अच्छे ज्ञान में, और स्थानीय कलीसिया के प्रबंध/संचालन में परिपक्व पुरुष होते हैं।

4.3.1 उन्हे निर्धारित प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये और सर्टिफिकेट लेना चाहिये।

4.3.2 उन्हें बाइबल के स्तर के अनुरूप गुण–सम्पन्न होना चाहिये जो पहले तीमुथियुस 3 और तीतुस 1 में मिलता है।

पाठ–18
स्वदेशी नेतृत्व प्रशिक्षण – 2[1]

1. नेतृत्व वर्गीकरण के पांच प्रकार
(डेविड डब्लू. बेनेट के अनुसार, ''21 वी शताब्दी के लिये ईश्वरविज्ञान और मिशनरियों के कार्य की शिक्षा के एक अध्याय से लिया गया, लेखक डॉ. एडगर एलिस्टन, ऑरबिस, 1996)

1.1 प्रकार 1 के अगुवे (छोटे समूह के अगुवे) : ये छोटे समूह के अगुवे होते हैं।

1.1.1 इनमें घरेलु कलीसिया और सेल ग्रूप्स के अगुवे, परिवार के मुखिया, संडे स्कूल शिक्षक, और अन्य जो सीमित संख्या के लोगों की आमने–सामने अगुवाई करने और प्रोत्साहित करने में सम्मिलित होते हैं।

1.1.2 वे साधारणतः अवैतनिक कार्यकर्ता और ऐच्छिक रूप से स्वयं–सेवक होते हैं।

1.2 प्रकार 2 के अगुवे (आत्म निर्भर स्थानीय निरीक्षक) : ये स्वयं–सेवक होते हैं और दूसरे स्वयं–सेवकों का उनके स्थानीय क्षेत्र में निरीक्षण करते हैं।

1.2.1 उनका प्रभाव बहुगुणित हो जाता है क्योंकि वे उन दूसरे अगुवों को प्रोत्साहित और सुसज्जित करते हैं जो स्वयं भी अगुवाई कर रहे होते हैं। तथापि उनके प्रभाव का क्षेत्र फिर भी सीमित ही होता है, क्योंकि उनका अपना दैनिक रोजगार होता है, और उनका ध्यान मात्र अपने क्षेत्र में केन्द्रित होता है।

1.2.2 इस श्रेणी में आत्म–निर्भर या ''टेंट–मेकर'' पास्टर और मिशनरी आते हैं, वैसे ही कई घरेलु कलीसियाओं के स्वयं–सेवक निरीक्षक भी आते हैं।

1.3 प्रकार 3 के अगुवे (पूर्णकालिक स्थानीय अगुवे) : इनमें वे अगुवे आते हैं जो अपना अधिकांश समय मसीही नेतृत्व के कार्य के लिये ही समर्पित करते हैं।

1.3.1 इनमें स्थानीय कलीसिया के पास्टर, कलीसिया रोपण करने वाले, और मिशनरी आते हैं। वे एक ही कलीसिया में या उस स्थान की कई कलीसियाओं में अपना पूरा समय देते हैं।

1.3.2 ये बहुधा दो पेशे वाले होते हैं, अर्थात् उनकी आय के लिये उन्हें मसीही सेवकाई का कार्य करने के लिये वेतन दिया जाता है, और वे किसी दूसरे साधन से भी आय प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिये, फसल उगाने के द्वारा।

1.4 प्रकार 4 के अगुवे (क्षेत्रीय अगुवे) : ये वे अगुवे होते हैं जिनका प्रभाव एक पूरे क्षेत्र में अनुभव किया जाता है।

1.4.1 वे अनेक मिशन दल के अगुवे हो सकते हैं, या कलीसियाओं के बहुतेरे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं के जिला निरीक्षक होते हैं, या किसी राज्य के छोटे बाइबल कालेज के प्रधानाध्यापक हो सकते हैं जो उस पूरे राज्य में सेवा देते हैं।

1.4.2 हो सकता है कि वे अपने लेखन के द्वारा भी प्रभाव डालते हैं, परंतु यह उन्हीं के क्षेत्र या स्थानीय भाषा तक ही सीमित होता है।

1.5 प्रकार 5 के अगुवे (राष्ट्रीय अगुवे) : ये वे अगुवे होते हैं जिनका प्रभाव पूरे देश में या अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होता है।

1.5.1 वे किसी डीनॉमिनेशन के, राष्ट्रीय मिशन के या मसीही संगठनों के अगुवे होते हैं, या ऐसे प्रशिक्षण संस्थानों के जहां पूरे देश से विद्यार्थी आते हैं।

1.5.2 हो सकता है कि वे नीतियों को बनाने के द्वारा, लेखन के द्वारा, या मास–मिडिया के द्वारा, या राष्ट्रीय–स्तर की सभा–गोष्ठियों में बोलने के द्वारा प्रभाव डालते हो। जबकि अपने उन सहकर्मियों पर उनका व्यक्तिगत प्रभाव पड़ता ही रहता है जो स्वयं भी विस्तृत जिम्मेवारियों को निभाते हैं।

1.6 ऐसी बहुत–सी सेवकाइयां हैं जो किसी एक ही वर्गीकरण में नहीं आती हैं। तथापि इस वर्गिकरण में हम नेतृत्व के अनेक प्रकारों को देखते हैं जो एक बहुत ही संकीर्ण और केन्द्रित रूप से लेकर बहुत ही विस्तृत प्रभाव के रूप में दिखाई देते हैं। और इनके विभिन्न स्तरों के लिये विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण और विकास की आवश्यकताएं होती हैं।

2. शिक्षा देने की (शिष्यता की) विभिन्न पद्धतियां:

2.1 उदाहरण के द्वारा शिक्षा देना : यीशु ने उदाहरण के द्वारा सिखाया। (लूका 11:1) में हम पढ़ते है कि यीशु किसी स्थान में प्रार्थना कर रहा था, प्रार्थना पूरी करने के पश्चात् उसके एक शिष्य ने उससे कहा, ''हे प्रभु, हमें प्रार्थना करना सिखा दे।'' तब यीशु ने उन्हे सिखाया कि प्रार्थना कैसे करना चाहिये। उसने उन्हें उसके स्वयं के उदाहरण के द्वारा यह भी सिखाया कि सुसमाचार प्रचार कैसे करना चाहिये, पवित्रशास्त्र का उपयोग कैसे करना चाहिये, और विश्वास को कैसे काम में लाना चाहिये।

2.2 जीवन की परिस्थितियों के मध्य शिक्षा देना : जैसा कि मरकुस 9:28–29 में लिखा हुआ है, यह प्रार्थना और उपवास पर शिक्षा देने के लिये बहुत ही अच्छा उदाहरण है। यह जीवन की सामान्य परिस्थिति में अनौपचारिक शिक्षा देने का एक उदाहरण है। वे यीशु के पास आये जो सिखाने के लिये हमेशा तैयार रहता था।

2.3 निकट संपर्क में शिक्षा देना : बहुत–से ऐसे अवसरों पर यीशु अपने शिष्यों के साथ था जब वे विभिन्न परिस्थितियों का सामना कर रहे थे। उसने हमेशा स्वयं को उनके सम्पर्क में रखाः आनन्द के अवसरो पर भी और परीक्षा और विरोधी परिस्थितियों में भी।

2.4 ईश्वरविज्ञान प्रशिक्षण के एक्सटेन्शन कोर्स के द्वारा शिक्षा देना : यह विधि अविकसित देशों में व्यापक रूप से उपयोग में लायी जा रही है। भारतीय संदर्भ में यह उपयुक्त है। यह अनिवासी प्रशिक्षण कार्यक्रम है जो कहीं भी और कभी भी दिया जा सकता है जब शिक्षक और विद्यार्थी एकसाथ मिल सकते हैं।

2.5 व्यावसायिक सुसमाचार–प्रचारकों को शिक्षा–प्रशिक्षण देना : यह प्रकार इसलिये है कि जवानों को आत्मनिर्भर रूप से सुसमाचार–प्रचार का कार्य करने के लिये प्रशिक्षित किया जाये। इस पद्धति को ''टेंट–मेकर'' के नाम से भी जाना जाता है जो प्रेरितों के काम 18:1–3 में वर्णित पौलुस, प्रिस्किल्ला और अक्विला के उदाहरण पर आधारित है।

2.6 कम अवधि वाला, ग्रामीण बाइबल स्कूल प्रशिक्षण : सुसमाचार प्रचारकों और कलीसिया रोपण करने वालों को प्रशिक्षित करने के लिये, मिशन के क्षेत्र में ही ग्रामीण मातृभाषा में बाइबल स्कूल होने की आवश्यकता होती है। स्कूल आफ इवेन्जेलिजम और पोर्टेबल बाइबल स्कूल ये दोनो इसके लिये अच्छे नमूने हैं।

पाठ–19

परमेश्वर का मिशनः परमेश्वर की ज्योति को केन्द्रित करना

1. यीशु जगत की ज्योति है ।

1.1 एक प्राचीन भविष्यवाणी यीशु मसीह में पूरी हुई थी। (यशायाह 42:6)

1.2 वचन ने मनुष्यजाति में ज्योति लायी। (यूहन्ना 1:4–5)

1.3 यीशु ने स्वयं के लिये कहा कि वह जगत की ज्योति है। (यूहन्ना 8:12)

2. यीशु उसके लोगों को मिशन देता है कि वे उसकी ज्योति बनें।

2.1 यीशु दमिश्क के मार्ग पर पौलुस को ज्योति के रूप में मिला। (प्रेरितों 26:12–18)

2.2 उसके बाद पौलुस ने मूर्तिपूजकों के सामने यीशु के प्रकाश को प्रस्तुत किया। (2 कुरन्थियों 4:4–5)

2.3 यीशु ने कहा कि हम जगत की ज्योति हैं और हमें मनुष्यों के सामने चमकना चाहिये। (मत्ती 5:14–16)

3. अवश्य है कि प्रत्येक स्थानीय कलीसिया इस ज्योति को केन्द्रित करे।

3.1 केंद्रित किये गये प्रकाश में बिखरे हुए प्रकाश से अधिक प्रभाव होता है।

3.2 कलीसियाओं को उन गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिये जिनके द्वारा वे समुदायों के मध्य अपने प्रकाश को भली भांति चमका सकती हैं।

3.3 परमेश्वर की योजना सामान्य नहीं है, यह संकेन्द्रित वृद्धि है।

3.3.1 गुणात्मक वृद्धि सम्भव हो जाती है जब पवित्र आत्मा प्रत्येक विश्वासी के अंदर कार्य करता है।

3.3.2 जगत में परमेश्वर की ज्योति पर ध्यान केन्द्रित करने की सेवकाई में प्रत्येक विश्वासी को भाग लेना है। यही महान आदेश है।

3.3.3 यीशु के पास एक ही भौतिक शरीर था, परंतु अब यीशु पवित्र आत्मा के माध्यम से कार्य कर रहा है और बहुत से विश्वासी उसके प्रकाश को कई गुणा बढ़ा सकते है।

3.4 गुणा करना यह जोड़ करने से श्रेष्ठ है।

3.4.1 अगुवा विश्वासियों को सुसज्जित करता है, जैसे यीशु ने अपने शिष्यों को तैयार किया।

3.4.2 शिष्यों की संख्या द्विगुणित होती है तो कलीसिया की सेवकाइयां भी द्विगुणित होती हैं।

3.5 हमें महान आदेश पर ऐसे केंद्रित होना चाहिये कि वह कलीसिया की मूलभूत प्राथमिकता है।

3.5.1 हमें समझना चाहिये कि कलीसिया अद्वितीय है।

3.5.2 हमें समझना चाहिये कि कलीसिया क्या कर सकती है।

3.5.3 हमें समझना चाहिये कि कलीसिया को क्या करना चाहिये।

3.5.4 हमें समझना चाहिये कि कलीसिया को क्या करना ही चाहिये।

3.5.5 हमें समझना चाहिये कि यदि कलीसिया अपने कार्य में केन्द्रित नहीं है तो कलीसिया का मिशन अपनी शक्ति खो देता है, और कलीसिया अधिक प्रभाव नहीं कर पायेगी।

3.5.6 हमें समझना चाहिये कि स्थानीय कलीसिया परमेश्वर का चुना हुआ साधन है जिसके द्वारा जगत में सुसमाचार का प्रचार किया जाये।

3.5.6.1 यह मिशनरी सोसायटी नहीं है।

3.5.6.2 यह डिनॉमिनेशन नहीं है।

3.5.6.3 यह पास्टरों की शिक्षण संस्था नहीं है।

3.5.6.4 यह बाइबल–संस्था नहीं है।

3.6 महान आदेश अपना प्रभाव खो देता है यदि हम इसे स्थानीय कलीसिया से अलग कर देते हैं।

3.7 महान आदेश की प्रभावशीलता कम करने के लिये शैतान दो प्रकार की रणनितियों का उपयोग करता है।

3.7.1 वह सुसमाचार–प्रचार का नियुक्त कार्य औरों को देने के द्वारा––जैसे कि पैरा–चर्च एजेन्सीज, डिनॉमिनेशन या मिशनरी सोसायटी को देने के द्वारा––कलीसिया में से मिशन की समझ को दूर करा देता है।

3.7.2 वह स्थानीय कलीसिया के महान आदेश के दर्शन को धुंधला कर देता है और कलीसिया अपनी भूमिका को नहीं समझती।

पाठ–20

बचे हुए मिशन का सिंहावलोकन

1. हम अपने दर्शन, अपनी योजना और अपनी अपेक्षाओं में आशावादी हो सकते हैं।
   1.1 पहले की तुलना में आज संसार में मसीहियों की औसत संख्या अधिक है, और यह अनुपात बढ़ते ही जा रहा है।
   1.2 मसीहीयत सारे धर्मों से अधिक व्यापकता से फैली हुई है।
      1.2.1 ऑपरेशन वर्ल्ड (2010 संस्करण) हमें बताता है (पृष्ठ 2) कि दुनिया के 159 देशो में मसीहियों की संख्या सर्वाधिक है।
      1.2.2 इसके विपरीत, इस्लाम मात्र 52 देशो में सर्वाधिक संख्या में है।
      1.2.3 बौद्ध धर्म के लोग मात्र 14 देशों में सर्वाधिक संख्या में है।
      1.2.4 हिन्दु मात्र भारत और नेपाल में सर्वाधिक संख्या में है।
   1.3 नीचे दिये गये चार्ट में सांख्यिकीय लेखा यह दर्शाता है कि पूरे विश्व में कलीसिया बढ़ रही है। (चार्ट निम्नलिखित परिभाषाओं का उपयोग करता हैः ''गैर मसीही'' वे हैं जो स्वयं को मसीही नहीं मानते है। उदाहरण के लिये, यह श्रेणी उन लोगों को सम्मिलित नहीं करती जो कहते है कि वे मसीही है और परमेश्वर की संगति में नहीं चलते या बाइबल में विश्वास नहीं करते जैसे कि नामधारी मसीही। ''मसीही'' वे हैं जो स्वयं को मसीही कहते है–इनमे प्रोटेस्टेंट, कैथोलिक, ऑर्थोडॉक्स इत्यादि सम्मिलित हैं।)

दिनांक	गैर–मसीही	मसीही	अनुपात
100 AD	18,00,00,000	5,00,000	360:1
1000 AD	22,00,00,000	10,00,000	220:1
1500 AD	34,40,00,000	50,00,000	69:1
1900 AD	1,06,60,00,000	4,00,00,000	27:1
1950 AD	1,65,00,00,000	8,00,00,000	21:1
1980 AD	3,02,50,00,000	27,50,00,000	11:1
1982 AD	3,64,70,00,000	54,00,00,000	7:1
2010 AD	6,80,00,00,000	2,10,00,00,000	3:1

   1.4 हम वास्तविक रूप से कलीसिया की वृद्धि के दर को दर्शा सकते हैं।
      1.4.1 मसीही लोग अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका में ध्यान आकर्षित करने की दर से बढ़ रहे हैं।
      1.4.2 कलीसिया वृद्धि की दर गैर मसीहियों की संख्या की बढ़ोतरी को मात दे रही है।
         1.4.2.1 1980 से 1992 तक में गैर मसीहियों की जनसंख्या बढ़कर 622 मिलियन हो गई, उसमें 20.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उसी समय मसीही जनसंख्या 265 मिलियन हो गई, उसमें 96.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
         1.4.2.2 1992 से 2010 तक में मसीही जनसंख्या 1,560,000,000 हो गई, यह 289 प्रतिशत वृद्धि है। कलीसिया लगभग तिगुनी हो गई, जबकि विश्व की जनसंख्या भी बढ़ी परंतु मात्र 86.5 प्रतिशत से।
2. हम कठिनाइयों का और कठिन स्थानों का भी सामना करते हैं।
   2.1 यूरोप में मसीहत अपने सदस्य खो रही है। वहां कलीसिया विकसित नहीं हो रही है।
   2.2 उत्तरी अमेरीका में मसीहत थम गई है।
   2.3 मसीहत 10/40 खिड़की में प्रवेश कर रही है, परंतु धीरे–धीरे।
3. हमें इस कार्य पर जोर देना चाहिये कि सुसमाचार से वंचित रहे हुये आखरी व्यक्ति तक हम पहुंचे।
   3.1 लगभग 1200 जनजातीय समूह है जिन लोगों तक नहीं पहुंचा जा सका है।
   3.2 1,40,00,000 स्थानीय कलीसिया में लगभग 1,00,00,00,000 समर्पित मसीही हैं।
   3.3 सुसमाचार से वंचित 1200 में से प्रत्येक समूह के लिये लगभग 11,666 कलीसियाएं हैं।
4. हम अवश्य ही संपूर्ण भारत में परमेश्वर के उद्धार के साथ पहुंचें।

सामाजिक पहलू : वैश्विक सुसमाचार–प्रचार के लिये जातीय पहुंच/पद्धति

1. हमें प्रत्येक राष्ट्र के भीतर प्रत्येक जाति–समूह तक पहुंचना चाहिये।
   1.1 यीशु प्रत्येक जाति–समूह को छुटकारा देने के लिये बलिदान हुआ। (प्राकशितवाक्य 5:9)
   1.2 हमें प्रत्येक जाति में से शिष्य बनाना चाहिये। (मत्ती 28:19–20)
   1.3 हमें उसी एक सुसमाचार की घोषणा करनी चाहिये जो देहधारण के सिद्धान्त के अनुसार है।
   1.4 हमें वह ''पुल'' बनना चाहिये जिसके द्वारा यीशु को सांस्कृतिक भाषा में प्रस्तुत किया जा सके।
   1.5 हमें यीशु के विषय मे प्रत्येक जन को उसकी मातृभाषा, उसकी हृदय की भाषा, में बताना चाहिये।
2. हमें सांस्कृतिक बाधाओं को पार करके जाना चाहिये।
   2.1 प्रत्येक लोक–समूह की अपनी अलग–अलग प्राथमिकताएं होती हैं कि वे कैसे खाते हैं, कैसी वेशभूषा है, कैसे रहते हैं, कैसे बात करते हैं, और संसार के प्रति क्या दृष्टिकोण रखते हैं।
   2.2 डाक्टर जार्ज मैक्गवर्न ने कहा है, ''लोग जाति, भाषा और सामाजिक स्तर की सीमाओं के बाहर जाये बिना मसीही बनना अधिक पसंद करते हैं।''
   2.3 एक ''एक–रूप ईकाई'' (होमोजीनीअस यूनिट) वह समूह है जिसमें एकसमान गुण पाए जाते हैं।
3. हमें स्मरण रखना चाहिये कि सुसमाचार सांस्कृतिक सीमाओं से ऊपर है।
   3.1 परमेश्वर मित्र–नेटवर्क का उपयोग करता है।
   3.2 हम अपने व्यक्तिगत सम्बन्धियों के मध्य सुसमाचार बांटते हैं।
4. हमें संस्कृति, परम्परा और शुद्ध मसीहत के बीच अंतर करते आना चाहिये ।
   4.1 संस्कृति का एक उदाहरण : मसीही संगीत का एक प्रकार जिसे एक विशेष समूह गाना पसंद करता है।
   4.2 परम्परा का एक उदाहरण : ऐसे वाद्ययंत्र जो हमारे दादा–परदादा यीशु के लिये गाने में उपयोग करते थे।
   4.3 शुद्ध मसीहत : वह अनन्त सत्य जो यीशु के लिये गाया गया (चाहे गाने में संगीत का जो भी तरीका हो, और कोई भी वाद्ययंत्र उपयोग किया गया हो)
5. हमें अधिक से अधिक कलीसियाओं का रोपण करना चाहिये जिससे प्रत्येक जातीय समूह अपनी जातीय भाषा और पद्धति के अनुसार परमेश्वर की आराधना कर सके।
   5.1 प्रत्येक लोग–समूह सुसमाचार को अपनी हृदय की भाषा में सुनने का अधिकार रखता है।
   5.2 प्रत्येक लोग–समूह को अपनी हृदय की भाषा में आराधना करने मिलना चाहिये।
   5.3 प्रत्येक लोग–समूह के मसीही अपने जातीय समूह के अन्य लोगों तक पहुंचने के योग्य होने चाहिये ताकि उनके विश्वास की अभिव्यक्ति समूह के लिये विदेशी या बाहरी ना लगे।
6. सामूहिक परिवर्तन : ''बहुतों का व्यक्तिगत परिवर्तन''
   6.1 ये मसीहत की ओर होने वाले जन आन्दोलन होते हैं, जिन्हें कभी–कभी ''कलीसिया रोपण आन्दोलन'' कहा जाता है, जिसमें दूर तक आपस में जुड़े हुए परिवार विश्वासी बन जाते हैं।
   6.2 ऐसे परिवर्तन आपस में एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।
   6.3 इसके विषय में पाठ 26 में और अधिक सीखा जाएगा।

पाठ–22
सामाजिक पहलू : कार्यकारी साधन

परिचय :–

- निम्नलिखित चार्ट हमारा सहायक होगा कि जिस समूह तक हम सुसमाचार को लेकर जाना चाहते हैं उसकी विरोध करने या ग्रहण करने की सीमा क्या होगी इसे आंक सकें।
- एक बार जब हम पहचान लेते हैं कि कौनसा समूह सुसमाचार के लिये अधिकतम् ग्रहणशील है, तब हम वहां सुसमाचार प्रचार के प्रयास आरम्भ कर सकते हैं।

1. प्रतिरोध –ग्रहणशीलता अक्षः

अक्ष	प्रतिरोध–ग्रहणशीलता	जनसंख्या का प्रतिशत	सुसमाचार की ओर उनका व्यवहार और मनोवृत्ति कैसी है?
–5	शत्रुतापूर्ण		
–4	बहुत विरोधी		
–3	विरोधी		
–2	कम विरोधी		
–1	अधिकतर उदासीन		
0	उदासीन		
+1	अधिकतर सहायक		
+2	कम सहायक		
+3	सहायक		
+4	अत्याधिक सहायक		
+5	खोजी		

2. आत्मिक स्थितिः

।। लोगो की स्थिति	मसीही जनसंख्या का प्रतिशत	किसे सुसमाचार सुनाना आवश्यक है? उनकी आत्मिक स्थिति क्या है?
छिपे हुए	0 प्रतिशत	
सम्बन्ध स्थापित किया गया	0–1 प्रतिशत	
मामूली मात्रा में पहुंचा गया	1–10 प्रतिशत	
गम्भीरता पूर्वक पहुंचा गया	10–20 प्रतिशत	
पहुंचा जा चुका है	20 प्रतिशत या अधिक	

A. एन्गल स्केल एक साधन है जो हमें लोगों की, या एक व्यक्ति की, आत्मिक अवस्था को नापने में सहायता करता है।

B. यह एक साधन है जो संकेत करता है कि कोई लोग–समूह या व्यक्ति मसीह को ग्रहण करने की प्रक्रिया में किस बिन्दु पर है।

3. एन्गल स्केलः

एन्गल स्केल	लक्षण	जातीय जनसंख्या का प्रतिशत
–7	मसीहत की कोई पहचान नहीं	
–6	मसीहत की पहचान	
–5	सुसमाचार का ज्ञान	
–4	सुसमाचार की समझ	
–3	व्यक्तिगत प्रभाव की समझ	
–2	व्यक्तिगत आवश्यकता की पहचान	
–1	मसीह को ग्रहण करने की चुनौती पर विचार	
–0	मसीह को ग्रहण करने के निर्णय पर विचार	
+1	निर्णय का मूल्यांकन	
+2	स्थानीय कलीसिया में समावेश	
+3	सुसमाचार का सक्रिय फैलाव	

पाठ–23
कलीसिया रोपण – 1

1. कलीसिया रोपण करने वालों के द्वारा आदर्श रूप में प्रस्तुत किये जाने वाले सात मनोभाव :
   - 1.1 वे किसी एक विशेष समूह में सुसमाचार प्रचार करने को अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी मान लेते हैं।
   - 1.2 वे अपनी स्थानीय कलीसिया की सीमा से आगे देखते हैं और अपने पड़ोस में या गांव में, अपने शहर या क्षेत्र में, यहां तक कि अपने पूरे राष्ट्र में पहुंचने की रणनीति बनाते हैं।
   - 1.3 वे परमेश्वर से मांगते है कि उन्हें खोई हुई आत्माओं को जीतने के प्रति दृढ़ निश्चय और उत्साह देगा ताकि वे उनका मार्गदर्शन करें और उन्हें अपनी कलीसिया में समाविष्ट करें।
   - 1.4 वे इस बात के लिये समय लेते हैं कि अपनी स्थानीय सभा में कलीसिया रोपण को स्वीकार किये जाने का वातावरण निर्माण करें। (इसमें समय लगता है; वे बहुत उतावली में यह कार्य नहीं कर सकते।)
   - 1.5 वे प्रभावहीन पद्धतियों को बनाये नहीं रखते, चाहे वे उनकी परंपराओं का भाग करही हों।
   - 1.6 वे अन्य लोगों को शिष्यता, सुसमाचार प्रचार और कलीसिया रोपण के सिद्धान्तो में प्रशिक्षित करते हैं।
   - 1.7 वे लम्बे समय तक सेवकाई करने का समर्पण करते हैं। (ठीक वैसे ही जैसे मानवीय माता–पिता को अपने बच्चे को बढ़ाने में लगभग 20 वर्ष लग जाते हैं, एक स्वस्थ कलीसिया को रोपित होकर फलते–फूलते देखने में कई वर्ष लगते हैं।)
2. कलीसिया रोपण के नमूने
   - 2.1 भौगोलिक : किसी लक्ष्य किये गये क्षेत्र या प्रान्त में पहचाना गया समुदाय।
     - 2.1.1 आराधना–स्थल : मातृ–कलीसिया इस स्थान में एक नयी सभा का आरम्भ करके उसे बढ़ाती है।
     - 2.1.2 उपग्रह : जो कलीसिया भवन से दूर रहते हैं उनके लिये कलीसिया ''शाखाएं'' बनाती है।
     - 2.1.3 समूहीकरण : अनेक छोटी कलीसियाओं की देखभाल करने के लिये अगुवों का एक ही समूह होता है।
     - 2.1.4 मिशन : एक डिनॉमिनेशन के द्वारा बढ़ाया गया मिशन वहां पहुंचता है जहां कोई भी स्थानीय कलीसिया नहीं पहुंची होती है। वहां बाइबल अध्ययनों का आरम्भ किया जाता है जो अंततः आराधना सभा में परिवर्तित हो जाता है।
     - 2.1.5 घरेलु कलीसियाएं : कुछ घरेलु कलीसियाओं के समूह की देखभाल करने के लिये एक निरीक्षक होता है परंतु बहुतेरी ऐसी होती हैं जिन्हें किसी अभिषिक्त अगुवे से प्रत्यक्ष देखभाल प्राप्त नहीं होती है।
   - 2.2 लघु समूह : छोटे–छोटे समूह जो मातृ–कलीसिया से जुड़े रहते है परंतु सप्ताह के दौरान अलग–अलग मिलते हैं।
     - 2.2.1 आराधना–स्थल : नया समूह मातृ–कलीसिया के सिद्धान्त को प्रतिबिम्बित करता है, परंतु उनमें कुछ सामान्य गुण होते हैं जो उन्हें एक दूसरे के पास लाते हैं।
     - 2.2.2 उपग्रह : कलीसिया एक ऐसे समूह को मान्यता देती है जो आराधना सभा में नहीं आता है; वह एक विशेष स्थान और सेवा की योजना बनाती है ताकि उस समूह की आवश्यकता को पूरा कर सके।
     - 2.2.3 मिशन : कलीसिया के भीतर ही छोटे समरूप समूह बनाये जाते हैं; वे घरों में बाइबल अध्ययन करते हैं, इस प्रकार सदस्यों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।
     - 2.2.4 घर : कलीसियाएं घरों में एकत्रित होती हैं, यह आर्थिक रूप से किफायती होता है।
   - 2.3 इमारत : कलीसिया की ईमारत को कलीसिया रोपण के लिये उपयोग में लाने के विभिन्न तरीके।
     - 2.3.1 एकमात्र उपयोग : एक ईमारत जो मात्र आराधना के लिये उपयोग में लायी जाती है।
     - 2.3.2 विविध उपयोग : एक भवन जो कलीसिया के द्वारा रविवार के दिन और कभी–कभी अन्य दिनों में भी आराधना के लिये उपयोग में लाया जाता है तथापि सप्ताह के अन्य दिनों में वह अन्य लोगों के द्वारा अन्य कार्यों के लिये (जैसे कि स्कूल के लिये) इस्तेमाल किया जाता है।
     - 2.3.3 मिलकर उपयोग : बहुत सी कलीसियाओं के समूह एक ही इमारत का उपयोग करते हैं। (ये समूह अलग–अलग देशों के, जनजातियों या भाषाओं के हो सकते हैं।)

2.3.4 स्व–वित्तपोषित : कलीसिया अपनी इमारत का एक भाग दूसरे को किराये पर देती है ताकि अपने लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करे।

2.4 प्रायोजक : नई कलीसिया रोपण की सहायता करने के अलग–अलग तरीके

2.4.1 मातृ–कलीसिया : कलीसिया किसी अन्य स्थान में पुत्री–कलीसिया के जन्म में सहायक होती है।

2.4.2 पालक समूह : एक समूह अपनी कलीसिया से अलग हो जाता है ताकि किसी और स्थान में पुत्री–कलीसिया की सहायता करे।

2.4.3 योजना पूर्वक विभाजन : दृढ़ निश्चयी योजना के अनुसार कलीसिया दो भागो में विभाजित हो जाती है।

2.4.4 भागीदारी : बहुत–सी कलीसियाएं पुत्री–कलीसिया को सहायता देने के लिये एक समूह बना लेती है।

2.4.5 डिनॉमिनेशन : डिनॉमिनेशन योजना बनाता है कि स्थानीय कलीसियों की संख्या को बढ़ाया जाये।

पाठ–24

कलीसिया रोपण – 2

3. कलीसिया रोपण दल का चुनाव और चयनः

3.1 यह दल (मिशन बल) निम्नलिखित बातों के लिये लम्बे समय तक बचनबद्ध होना चाहियेः

3.1.1 रोपण दर्शन को सन्तों के सामने निरन्तर रखने के लिये,

3.1.2 कई प्रकार की सम्भावनाएं खोजने और विश्लेषण करने के लिये,

3.1.3 अवसरों को खोजने के लिये ताकि कलीसिया के लोग पालक बन सके,

3.1.4 रोपण की रणनीति में अधिक से अधिक लोगों को संगठित करने के लिये,

3.1.5 खोज और प्रगति के विषय में कलीसिया को निरन्तर सूचित करते रहने के लिये,

3.1.6 कलीसिया रोपण के लिये, परमेश्वर को प्रसन्न करेंगे ऐसे निर्णय लेने के लिये कलीसिया की अगुवाई करने के लिये।

3.2 संगठित दल के सदस्यों में विशेष गुण होने चाहिये ।

3.2.1 उनके पास मिशनरी आत्मा होनी चाहिये।

3.2.2 वे आत्मिक रूप से अग्रसर होने चाहिये।

3.2.3 खोई हुई आत्माओं के लिये उनमें उत्साह, और लोगों के लिये चिन्ता होना चाहिये।

3.2.4 वे खोज करने और आंकड़ों का विश्लेषण करने के योग्य होने चाहिये।

3.2.5 उन्हें जानना चाहिये कि संगठन के साथ मिलकर कैसे काम किया जाता है।

3.2.6 उन्हें बहुत अधिक और कठिन कार्य करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

3.2.7 उन्हें अगुवाई करने के योग्य होना चाहिये।

3.2.8 उन्हें आत्मा में आशावादी होना चाहिये।

4. एक नई कलीसिया का रोपण कहां किया जाये इसका चुनाव कैसे करें

4.1 केवल पवित्र आत्मा ही हमें किसी स्थान तक अगुवाई दे सकता है।

4.1.1 हमें प्रार्थना के द्वारा परमेश्वर की अगुवाई मांगनी चाहिये।

4.1.2 बाइबल अध्ययन के द्वारा परमेश्वर की अगुवाई खोजना इस प्रक्रिया में केंद्रिय घटक है।

4.2 सावधानी पूर्वक किया गया विचार, अध्ययन, वार्तालाप महत्वपूर्ण है। खोज कीजिये और नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कीजिये।

4.2.1 लक्ष्य किये हुए समुदाय की जनसंख्या कितनी है? (जाति, लोगों के समूह, इत्यादि)?

4.2.2 क्या उस समुदाय के मध्य कोई कलीसिया है? यदि है तो अविश्वासियों और विश्वासियों के मध्य क्या अनुपात है?

4.2.3 सुसमाचार सुनाने के अन्य प्रयासों को इस समुदाय ने कैसी प्रतिक्रिया दी है?

4.2.4 परमेश्वर के राज्य के लिये उस समुदाय का क्या प्रभाव हो सकता है?

4.2.5 क्या आपके डिनॉमिनेशन की बढ़ती के लिये यह समूदाय कुटनीतिक महत्व का है?

4.2.6 मसीह के लिये इस समुदाय का क्या प्रभाव हो सकता है?

4.2.7 क्या इस समुदाय में नये विश्वासियों का समूह थोड़े समय में ही स्वयं की सहायता कर सकता है?

4.2.8 आपके लक्ष्य किये गये समुदाय के समीप क्या कोई अन्य पहले से स्थापित कलीसियाएं हैं, जो आपके इस नयी कलीसिया के रोपण के प्रयत्न में सहयोगी हो सकती हैं?

4.2.9 क्या वहां 2 या 3 छोटे प्रार्थना समूह या बाइबल अध्ययन समूह हैं, जिन्हे जोड़कर एक कलीसिया बनाई जा सकती है?

4.2.10 क्या वहां लोगों का कोई मूल समूह है जो कलीसिया आरम्भ करना चाहता है?

4.2.11 क्या उस लक्ष्य किये गये क्षेत्र में जाने के लिये कार्यकर्ता उपलब्ध हैं?

4.3 आप और कौन–से प्रश्न सोच सकते हैं जो कलीसिया रोपण दल की सहायता करेंगे कि किस स्थान में कलीसिया का रोपण करें इसके लिये वह परमेश्वर की अगुवाई को निश्चित कर सके?

पाठ–25
कलीसिया रोपण – 3

5. सही रणनीति

5.1 नयी कलीसिया का रोपण करना उससे सरल है जैसा हम साधारणतः सोचते हैं।

5.2 कलीसिया रोपण की एक बहुत उत्तम रणनीति बनाना यह उससे कई गुणा कठीन है जैसा हम साधारणतः सोचते हैं।

5.3 कलीसिया रोपण रणनीति के बारे में पूछने के लिये यहां कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न हैं:

5.3.1 आप किस प्रकार की कलीसिया का रोपण करना चाहते है (डिनॉमिनेशन से संबंधित, भाषा/सांस्कृतिक समूह से संबंधित, सामाजिक–आर्थिक आधार पर, इत्यादि)?

5.3.2 नई कलीसिया की सेवकाई के लिये क्या दर्शन होगा?

5.3.3 आप किस प्रकार की कलीसिया का रोपण करेंगे? अपने डिनॉमिनेशन में की अन्य कलीसियाओं के समान? या डिनॉमिनेशन में की कलीसियाओं से भिन्न प्रकार की? नई कलीसिया किन बातों में विशिष्ट होगी?

5.3.4 आपके लक्ष्य किये गये क्षेत्र में पहले से कौन–सी कलीसियाएं हैं? सेवकाई के लिये उनका दर्शन क्या है?

5.3.5 नयी कलीसिया के द्वारा किस प्रकार के लोगों को लक्ष्य बनाया जायेगा?

5.3.6 लक्ष्य किये गये समूह के द्वारा महसूस की जाने वाली आवश्यकताएं क्या हैं?

5.3.7 क्या वहां दूसरी कलीसियाएं हैं जो उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर रही हैं?

5.3.8 मातृ–कलीसिया की दशा क्या है?

6. कलीसिया रोपण करने के लिये दस कदम

6.1 प्रार्थना करें और योजना बनाएं।

6.2 कलीसिया रोपण के लिये ऐसा दल बनायें और प्रशिक्षित करें जो नई कलीसिया के रोपण का कार्य आगे बढ़ाने में आपके साथ सहयोग देगा।

6.3 ऐसे लोगों के समूह को या विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र को खोजें जहां कोई कलीसिया नहीं है।

6.4 मातृ (सहायक) कलीसिया के सदस्यों को तैयार करें।

6.5 चुने गये क्षेत्र को विकसित करें

6.5.1 मात्र कुछ व्यक्तियों को नहीं परंतु संपूर्ण परिवार को सम्मिलित करने का प्रयास करें।

6.5.2 नियमित आराधना सभाएं आरम्भ करने की शीघ्रता ना करें।

6.5.3 भविष्य में रोपण के लिये और परिणाम स्वरूप अच्छी फसल काटने हेतु ''भूमि को विकसित'' करने के लिये बाइबल अध्ययन समूह एक अच्छा रास्ता है।

6.5.4 सुसमाचार सुनाने के लिये जाते रहना महत्वपूर्ण है।

6.6 ऐसे स्थान की व्यवस्था कीजिये जहां नया समूह नियमित रूप से मिल सकेगा।

6.6.1 आरम्भ में घर ही पर्याप्त होगा।

6.6.2 यदि बड़े स्थान की आवश्यकता है तो किराये पर लें।

6.7 आधिकारिक रूप से सभाओं का आरम्भ करें।

6.7.1 नयी कलीसिया को एक नाम देना लाभदायक हो सकता है जिससे उस समूह की पहचान बनाने में सहायता होगी, जैसे कि ''मसीह जो चट्टान है'' या ''यीशु का झुण्ड''।

6.7.2 इस बिन्दु पर, लोगों के मध्य जानकारी देना आवश्यक है, परंतु आपसी स्तर पर बातचीत करते हुये बताना यह विज्ञापन का बहुत अच्छा तरीका है।

6.8 सभा–स्थान इत्यादी के लिये दीर्घकालिक लक्ष्य बनाइये, जिसमें यह आशा की जायेगी कि निरन्तर संख्या में वृद्धि होती जाये। (उपयुक्त स्थान को खरीदने के लिये एक कमेटी को कार्यभार सौंपा जा सकता है।)

6.9 गुणात्मक संख्या–वृद्धि की आत्मा को विकसित करें।

6.9.1 निरन्तर समूह को याद दिलाते रहें कि एक दिन वे मातृ–कलीसिया बन जायेंगे।

6.9.2 ऐसे अगुवे खोजिये जो लम्बे समय तक रहेंगे।

6.10 आधिकारिक रूप से कलीसिया स्थापित करें।

6.10.1 नियम–संग्रह बनाइये।

6.10.2 समर्पण की एक सभा आयोजित करें जिसमें संस्थापक उस नियम–संग्रह पर हस्ताक्षर करेंगे और जिन लोगों ने नयी कलीसिया बनाने में आर्थिक सहयोग दिया हो वे उसके लिये परमेश्वर की आशीष की प्रार्थना करेंगे।

6.10.3 एक कलीसिया रोपण दल बनायें जो बाद में इस कलीसिया के द्वारा नयी कलीसियाओं को स्थापित करेगा।

पाठ–26

वैश्विक घटक, जो कलीसिया रोपण को प्रभावित करते हैं

1. राजनीति और आर्थिक व्यवस्था का वैश्वीकरण:
   - 1.1 बहुराष्ट्रीय बड़ी कम्पनीयां बहुत से राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक धन नियन्त्रित करती हैं।
   - 1.2 विश्व के राष्ट्र और उसकी आर्थिक व्यवस्थाएं अधिकाधिक आपस में जुडती जा रही हैं। उदाहरण के लिये, एशिया में आये सुनामी से पश्चिम तुरंत प्रभाव हुआ।
   - 1.3 राजनैतिक शक्ति का पश्चिम और उत्तर से हटकर पूर्व और दक्षिण की ओर स्थानांतरण हुआ है।
   - 1.4 संयुक्त राष्ट्र के अधिकांश सदस्य अब ''बहुसंख्यक विश्व'' से हैं।
2. जनसंख्या विस्फोट :
   - 2.1 आज विश्व में 700 करोड़ से अधिक लोग है।
   - 2.2 तीसरे विश्व में 50: जनसंख्या 18 वर्ष से कम की है।
   - 2.3 भारत और चीन प्रत्येक देश में 120 करोड़ निवासी हैं।
   - 2.4 हमारी पृथ्वी के संसाधनों ––पानी, भोजन, रिक्त स्थान रहने के स्थान–– का क्षीण हो जाना।
3. शहरीकरण:
   - 3.1 लोग, विशेषकर युवा, रोजगार और शिक्षा की खोज में, ग्रामीण क्षेत्रों से शहर की ओर प्रवाहित हो रहे है।
   - 3.2 शहर वे स्थान हैं जहां बेरोजगारी, असमंजस, अकाल, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, लूटमार, अपनी पहचान को खो देना और अन्य सामाजिक और आर्थिक संकट बढ़ते जा रहे हैं।
4. पूंजीवाद और उद्योगवाद:
   - 4.1 संयुक्त राज्य अमेरीका और पश्चिमी देशों को चीन, भारत, ब्राजील, रशिया और अन्य देशों के द्वारा आर्थिक चुनौती दी जा रही है।
   - 4.2 विकासशील देशों में पूंजीवाद आ रहा है जो भविष्य में शीघ्रता से धन प्राप्ति में सफलता की आशा देने वाला तो है परंतु बहुत लोगों का मिथ्या मोह भंग हो रहा है, और बहुत से लोग नष्ट हो चुके है।
   - 4.3 समाजवाद, सरकारी योजनाओ और औद्योगीकरण के द्वारा सफलता की आशा देता है परंतु मात्र निराशा ही मिलती है।

5. अरब देश और ईस्लामीकरण
   5.1 विश्व का ईस्लामीकरण करने के लिये मुसलमान उनके ''जिहाद'' में बहुत उत्तेजित हो रहे है।
   5.2 बहुत–से मुस्लिम देश अपने पेट्रोलियम निवेश के द्वारा बहुत धनी हो चुके ह, वे अपने धन का उपयोग बहुत–से देशों में उपद्रव फैलाने में लगा रहे है, विशेषकर अफ्रीका, भारत और एशिया के दूसरे देशों में।
   5.3 ईस्लाम के आतंकवादी संघटन, हिंसा का उपयोग करके मसीहियों को भौगोलिक क्षेत्रों से बाहर कर देना चाहता है। उदाहरणः उत्तरी नाईजिरिया, दक्षिणी सूडान, और सिरिया में।
6. तकनीकी उन्नति
   6.1 कम्प्यूटर्स – विशेषकर ''डेस्कटॉप कम्प्यूटर'' – ने हमारे जीने के तरीके को बदल दिया है।
   6.2 उन्नत संचार व्यवस्था ने हमें मोबाईल फोन और दूरसंचार तन्त्र (इंटरनेट) के द्वारा पहले से कई गुना जोड़ दिया है। (और परिणाम स्वरूप सामाजिक माध्यम फेसबुक में 2012 में 90 करोड़ सदस्य थे)
   6.3 मसीही लोग, चिकित्सा संबंधी उन्नति के कारण भ्रूण हत्या, गर्भपात, अप्राकृतिक गर्माधरण की संभावनाएं इत्यादि के विषय में नैतिक प्रश्नों का सामना करते हैं।
7. अपराध
   7.1 मानव तस्करी करोड़ो रूपयों का अर्न्राष्ट्रीय व्यापार बन चुकी है। कई लाख लोग इसमें गुलामों की तरह जी रहे हैं।
   7.2 अन्तर्राष्ट्रीय औषधी उत्पादन संघ और अपराध व्यवसाय संघ में संयुक्त राष्ट्र माफिया, कोलम्बिया औषधी उत्पादन संघ, चायनीज ट्रायाड (चीन का खतरनाक गैंग) जापानी याकुजा और दूसरे अन्य सम्मिलित हैं।
8. शिक्षा
   8.1 अच्छे प्रशिक्षण की चाहत रखना दुनिया के प्रत्येक स्थानों में देखी जा सकती है, विशेषतः विकासशील देशो में।
   8.2 लोगो को शिक्षित करने के प्रयासों के बावजूद निरक्षरता एक चुनौती बनी हुई है। विश्व का बहुसंख्यक भाग अभी भी कार्यात्मक रूप से निरक्षर है।
   8.3 हम बहुधा ये देखते हैं कि जहां अगुवों की आवश्यकता होती है, वहां समाज और आर्थिक वितरण की बदलती हुई मांगो के अनुरूप शिक्षा नहीं दी जाती है।
   8.4 बदलती और बढ़ती हुई मांगो को पूरा करने के लिये शिक्षा को व्यवहारिक रूप से लचीली होना चाहिये।

पाठ–27

कलीसिया रोपण के विश्लेषण हेतु शब्दावली और साधन

1. कलीसिया वृद्धि तीन प्रकार की होती हैः
   1.1 जैविक वृद्धि (आन्तरिक – कलीसिया में जो माता–पिता हैं उनके बच्चे होना)।
      1.1.1. ''फूलो फलो और पृथ्वी में भर जाओ'' (उत्पत्ति 1:28)
      1.1.2 मसीही माता के बहुत–से बच्चे मसीही बन जाते हैं। (नीतिवचन 22:6)
   1.2 स्थानान्तरण वृद्धि (आन्तरिक – एक कलीसिया के सदस्य स्थानान्तरित होकर दूसरी कलीसिया में आ जाते हैं।)
      1.2.1 स्थानान्तरण वृद्धि से एक कलीसिया बढ़ती है परंतु दूसरी कलीसिया घटती है।
      1.2.2 कुछ कलीसियाओं पर भेड़ें चुराने का दोषारोपण किया जा सकता है। (मसीहियो को दूसरी कलीसिया से अपनी कलीसिया की ओर आकर्षित करना)
   1.3 रूपान्तरण वृद्धि (बाह्य – कलीसिया में ऐसी वृद्धि होती है जब आत्माएं पाप से निकलकर परमेश्वर के स्वर्गीय परिवार में जीती जाती हैं)।
      1.3.1 गैर–मसीही लोग यीशु को अपना प्रभु और उद्धारकर्ता ग्रहण करते हैं।
      1.3.2 यह उस क्षेत्र को मुक्त कराने की तरह है जिसे शैतान ने अपने कब्जे में ले रखा है।

1.4 इन तीनों शब्दों को समझने से, और हम किस प्रकार की वृद्धि कर रहे हैं यह पहचानने से, हमारी सुसमाचार प्रचार और शिष्यता की सेवकाइयों की योजना बनाने में सहायता हो सकती है।

2. विश्वासियों को गिनना

2.1 हम क्यों गिनती करते हैं? क्या इसलिये कि हम अपनी कलीसिया की वृद्धि के बारे में संतुष्ट (या महत्वपूर्ण) अनुभव करें? या यह रोग–निदान करने और मूल्यांकन के लिये है?

2.2 हम किसे गिनते हैं? (लूका 15:3–7)

2.2.1 क्या हमें मात्र उन्हें गिनना चाहिये जो मात्र आराधना में उपस्थित होते हैं? (नहीं)

2.2.2 क्या हमें मात्र वयस्कों को गिनना चाहिये? (नहीं)

2.2.3 क्या हमें मात्र बपतिस्मा लिये हुए मसीहियों को और कलीसिया के सदस्यों को ही गिनना चाहिये ?(नहीं)

2.3 हमें सभी वयस्कों, बच्चों, जवानों, पुरूषों, महिलाओं, सदस्यों और अभी सदस्यता न लिये हुओं इत्यादि को, जितना संभव हो सके, गिनना चाहिये जिससे हमें एक वर्ष के कार्यकाल के दौरान की वृद्धि का (या घटी का) स्पष्ट और सटीक चित्र मिल सके।

3. लेखाचित्र (ग्राफ)

3.1 ग्राफ कलीसिया की वृद्धि या अवनति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं।

3.2 कलीसिया की सदस्यता और उपस्थिति इत्यादि के आंकड़ों को ग्राफ पर दिखने के द्वारा हम जान सकते हैं कि कलीसिया वृद्धि कर रही है या नहीं।

3.3 ग्राफ बनाने के लिये (यदि आपके पास कम्प्यूटर प्रोग्राम नहीं है) ग्राफ पेपर पर पहले एक क्षितिज के समानांतर (आडी) रेखा खींचें। फिर इस रेखा के आरम्भ के बिन्दु से (बाई ओर के आरम्भ से) एक लम्बवत् (खड़ी) रेखा खींचें।

3.3.1 क्षितिज के समानांतर (आडी) रेखा पर समय के बीतने को महिनों में, या वर्षों में दिखायें।

3.3.2 लम्बवत् (खड़ी) रेखा पर सदस्यों की संख्या या उपस्थिति को दर्ज करें।

3.4 आगे, प्रत्येक वर्ष के ऊपर एक बिन्दु लगायें जो दर्शाता है कि उस समय कितने सदस्य थे।

3.5 जब बिन्दु पूर्ण हो जायें तब प्रत्येक बिन्दु को एक वर्ष से अगले वर्ष में जोड़ें। परिणाम स्वरूप जो रेखा बनती है, वह एक समय अवधि के बाद एक वर्ष से अगले वर्ष तक की, आपने लिखे हुये आंकड़ों के आधार पर, कलीसिया की वृद्धि या अवनति को दिखाती है। (नीचे ग्राफ को देखें)

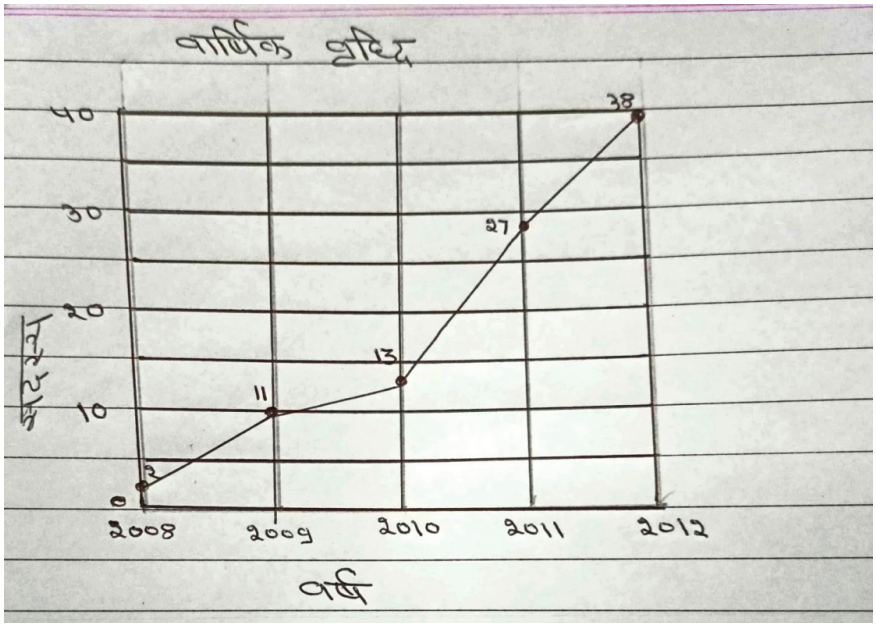

यीशु मसीह की कलीसिया वर्ष ..... में

पाठ–28
कलीसिया रोपण आन्दोलन का वर्णन

परिचयः

समय–समय पर, परमेश्वर के अनुगह से, पवित्र आत्मा इतना सामर्थ से कार्य करता है कि सम्पूर्ण परिवार, गांव और लोग समूह बहुत बड़ी संख्या में मसीहत की ओर मुड़ जाते हैं। जब ऐसा होता है, और परिणाम स्वरूप जनसंख्या के बहुत से हिस्सों में स्वदेशी कलीसियाएं बहुगुणित रूप से बढ़ती हैं, तब इसे ''कलीसिया रोपण आन्दोलन'' कहते हैं।

1. कलीसिया रोपण आन्दोलन के विषय में पहला गुण : कलीसिया रोपण आन्दोलन तेजी से कलीसियाओं को रोपित होते देखता है।
   - 1.1 कितनी तेजी से? इतनी तेजी से कलीसियाएं रोपित होती हैं जो हमारी कल्पना के बाहर मात्र परमेश्वर का आत्मा ही सोच सकता है।
   - 1.2 कलीसिया रोपण आन्दोलन में यह आम बात देखने मिलती है कि जो कलीसियाएं अभी नयी ही होती हैं वे और नयी कलीसियाओं का रोपण करती हैं।
   - 1.3 ''कलीसिया रोपण आन्दोलन'' और ''जनसमूह आन्दोलन'' में फर्क समझना चाहिये। अन्य धर्मों में जनसमूह आन्दोलन होते रहे हैं। उदाहरणार्थः यह सूचित किया गया है कि सन् 1921 से 1931 तक आसाम, बंगाल और बिहार में दस लाख से अधिक लोग जीववाद से हिन्दु धर्म में मिला लिये गए।
2. कलीसिया रोपण आन्दोलन के विषय में दूसरा गुण : कलीसियाएं स्वयं को कई गुना बढ़ाती हैं।
   - 2.1 कलीसियाएं न मात्र नयी कलीसियाओं का रोपण करती हैं, परंतु वे एक ही समय में असंख्य कलीसियाओं का रोपण करती हैं।
   - 2.2 जब परमेश्वर आशीष देता है और कलीसिया रोपण आन्दोलन को भेजता है, तब अत्यंत अनपेक्षित स्थानों में कलीसियाएं भरभरा के उग जाती हैं, और बहुधा ऐसे लोगों के द्वारा आरम्भ की जाती हैं जिन्हें विश्वासी होकर अभी अधिक समय नहीं हुआ होता है।
   - 2.3 भारत में एक बॅपटिस्ट समूह ने सूचित किया कि 1990 के अंत तक बात यह थी कि उसके पहले के 200 वर्षों में उन्होंने प्रतिवर्ष मात्र एक कलीसिया का रोपण किया था, और तब उनके क्षेत्र में कलीसिया रोपण आन्दोलन की बाढ़ आयी, और औसतन लगभग प्रतिदिन एक कलीसिया उगने लगी।
3. कलीसिया रोपण आन्दोलन के विषय में तीसरा गुण : वे स्वदेशीय होती हैं।
   - 3.1 कलीसिया रोपण आन्दोलन परमेश्वर के आत्मा का मूल स्तर पर होने वाला आन्दोलन है जो किसी एक प्रकार के मूल निवासियों के मध्य, उनके संपूर्ण विस्तार में, फैलता है और उन्हीं के मध्य के अगुवों के नेतृत्व में बढ़ता जाता है।
   - 3.2 कलीसिया रोपण आन्दोलन में आराधना के नये गीतों और अभिव्यक्तियों को उस विशिष्ट लोग समूह के मूल संगीत पर, और उन्हीं की अन्य मूल सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के आधार पर, विकसित किया जाता हैं।
   - 3.3 उदाहरण के लिये, जब उत्तर–पश्चिम म्यानमार के चिन जाति के लोगों ने बहुत बड़ी संख्या में यीशु को ग्रहण करना आरम्भ किया, तो उन लोगों ने प्रारम्भिक मिशनरियों के द्वारा सिखाये गये मसीही गीत गाये, लेकिन बाद में उन लोगों ने स्वयं ही आराधना और स्तुति के गीत विकसित किये, लिखे और उनके ही सांस्कृतिक संगीत के तरीके से गाये।
4. कलीसिया रोपण आन्दोलन का प्रवाह, लोगों के अपने–अपने विशिष्ट समूहों के भीतर या जनसंख्या के आपस में जुड़े हुये भागों में बढ़ता जाता है।
   - 4.1 सन् 1820 में, तमिलनाडू की नादर जनजाति इसका उदाहरण है। नादर जनजाति के दसियों हजार लोगों ने मसीहत को स्वीकार किया, जबकि उसकी तुलना में दूसरी जनजातियों में से बहुत कम लोगों ने ऐसा किया, परंतु बाद में 1890 के अन्त में मदिगस जनजाति के लोगों ने यीशु की ओर मुड़ना आरम्भ किया।
   - 4.2 यह सूचनाएं हैं कि उत्तरी अफ्रीका के एलजिरिया में बेरबेर जनजाति के हजारो लोग, (लगभग 50,000 तक), ईस्लाम से मसीहीयत की ओर मुड़े हैं। यह आन्दोलन राष्ट्रीय सीमाओं से लगे हुये पड़ोसी देशों में रहने वाले बेरबेर लोगों के मध्य फैल रहा है, किन्तु दूसरी जनजातियों में नहीं।
5. कलीसिया रोपण आन्दोलन कहां–कहां हुआ है :

5.1 भूतकाल में भारत के तमिलनाडू में और उत्तर पश्चिम भारत (विशेषकर मीजोरम और मणिपुर) में अनेक कलीसिया रोपण आन्दोलन होते रहे हैं। पंजाब में भी कलीसिया रोपण आन्दोलन होते रहे हैं, ऐसे क्षेत्र में जहां से वे पाकिस्तान की ओर भी बढे हैं।

5.2 वर्तमान में भारत के बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और अन्य स्थानों में कलीसिया रोपण आन्दोलन होने की सूचनाएं दी गई हैं। (मसीही अगुवे बहुधा कलीसिया रोपण आन्दोलन के विषय में गोपनीय होते हैं, ताकि अन्य धर्मों के कट्टरवादी लोगों के विरोध से बचा जा सके।)

पाठ–29

कलीसिया रोपण आन्दोलन आरम्भ करना/बनाए रखना

परिचयः

दस प्रायोगिक कदम हैं, जिनका यदि अनुसरण किया जाये तो कलीसिया रोपण आन्दोलन प्रारम्भ करने और उसे बनाये रखने में फलदायक होंगे।

1. प्रार्थना और मध्यस्थता को प्राथमिकता दें :
   - 1.1 सारे कलीसिया रोपण आन्दोलन, किसी भी प्रकार के अन्य आत्मिक आन्दोलनों के समान, प्रार्थना के साथ आरम्भ होते हैं, और प्रार्थना से संतृप्त किये जाने चाहिये।
   - 1.2 कलीसिया रोपण आन्दोलन परमेश्वर का कार्य है, और इसमें अंधकार की शक्तियों के साथ आत्मिक युद्ध निहित होता है।
2. अपने प्रयासों को विशिष्ट स्थान के विशिष्ट लोगों में केन्द्रित करें।
   - 2.1 आपकी सेवकाई कहां केन्द्रित की जानी चाहिये इसके लिये स्थान की खोजबीन की जानी चाहिये।
   - 2.2 कलीसिया रोपण आन्दोलन की आवश्यकता कहां है, (कहां लोगों के समूह के बीच में किसी कलीसिया का अस्तित्व नहीं है), और कहां सुसमाचार को ग्रहण करने की सम्भावनाओं का संकेत मिलता है इसके संबंध में आंकड़ें एकत्रित किये जाने चाहिये।
   - 2.3 एक बार खोजबीन एकत्रित कर ली जाये तो फिर विश्लेषण करके उस पर प्रार्थना करें, तब बुद्धिमतापूर्ण निर्णय लिया जा सकता है कि किन लोगों के समूह में, और किस भौगोलिक स्थान में, पहुंचना चाहिये।
3. कलीसिया रोपण करने वालों को क्षेत्र में स्थित अल्पावधि प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।
   - 3.1 कलीसिया रोपण आन्दोलन आरम्भ करने और उसे बनाए रखने के लिये सबसे मुख्य आवश्यकता है कि विभिन्न स्तरों पर प्रशिक्षण देकर स्वदेशीय नेतृत्व विकसित किया जाये।
   - 3.2 छोटे समूह के अगुवों के लिये, स्थानीय कलीसिया के प्राचिनों के लिये, पूर्णकालिक कलीसिया रोपण करने वालों के लिये, और अंत में निरीक्षण करने वाले पास्टरों के लिये प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।
4. स्थानीय जनसाधारण में से कलीसिया रोपण करने वालों को विकसित करें।
   - 4.1 स्थानीय जनसाधारण में से कलीसिया रोपण का दल विकसित करने के लिये प्रत्येक सप्ताह उनसे मिलें और उन्हे प्रशिक्षित करें कि वे कैसे अपनी गवाही को बतायेंगे, कैसे दूसरों को यीशु का परिचय देंगे और कैसे आराधना के लिये छोटे समूह तैयार करेंगे।
   - 4.2 उन्हें प्रोत्साहित करें कि अपने विश्वास की कहानी अपने परिवार के सदस्यों को सुनाने के द्वारा आरम्भ करें।
5. प्रतिउत्तर देने वाले नये लोगों के समूह के लिये उपलब्ध रहें।
   - 5.1 यह सम्भव है कि परमेश्वर आपकी गवाही के द्वारा किसी को अनपेक्षित रूप से उसके उद्धार के समीप लायेगा। परमेश्वर की अनपेक्षित अगुवाई और फल के लिये हमेशा चौकन्ने रहें।
   - 5.2 उदाहरण के लिये, एक कलीसिया रोपण करने वाला एक रिक्शा में बैठकर प्रार्थना समूह की सभा के लिये जा रहा था। रिक्शा चालक के साथ हुये संक्षिप्त वार्तालाप में, उस चालक ने आत्मिक रूचि का संकेत दिया। अतः कलीसिया रोपण करने वाले ने बाद में उससे मिलने की योजना बनाई और वह उस चालक को उसके परिवार सहित यीशु की ओर लाने पाया।
6. घरेलु कलीसियाओं और छोटी कलीसियाओं का प्रयास करें।

6.1 जैसे–जैसे एक छोटा बाइबल (शिष्यता) अध्ययन समूह परिपक्व होता और बढ़ता जायेगा, आशापूर्वक ऐसा समय आयेगा कि उन्हें आराधना समूह की तरह मिलने का अधिकार दिया जाए। यह बहुधा बहुत ही सरलता से किया जा सकता है यदि उस समूह को घरों में ही एकत्रित मिलने दिया जाता रहे।

6.2 आरम्भिक वर्षो में कलीसिया भवनों के निर्माण से बचे रहें।

7. जैसे–जैसे आन्दोलन बढ़ता है, एक संगठनात्मक ढांचे की योजना बनायें।

7.1 यह आवश्यक है कि प्रत्येक लघु समूह को बड़े संगठनात्मक ढांचे से जोड़ा जाये।

7.2 कभी–कभी लघु समूह के सदस्यों को दूसरे लघु समूह के सदस्यों से मिलने का अवसर दिया जाना चाहिये। छोटे समूह के सदस्य उत्साहित होते हैं जब वे देखते है कि उनके समान विश्वास और मूल्यों को मानने वाले और भी बहुत से लोग हैं।

8. स्थानीय अगुवों को विकसित करने को महत्व दें।

8.1 छोटे समूह के अगुवों को निरंतर प्रशिक्षण देते रहना चाहिये।

8.2 लघु समूह के कुछ अगुवों में अगुवाई करने की अतिरिक्त क्षमताएं होंगी; उन्हें अपने झुंड को सशक्त बनाने के लिये अपनी क्षमताओं का उपयोग करने के अतिरिक्त अवसर देकर उत्साहित करना चाहिये।

9. नये मिशन के उपक्रमों को पहचानें और उनकी सहायता करें।

9.1 कलीसिया रोपण आन्दोलन में यह बिल्कुल ही असाधारण बात नहीं है कि नये विश्वासी और भी दूसरों को यीशु के पास लाते हैं – और वे दूसरे भी और दूसरों को लाते हैं, और ऐसा चलता रहता है।

9.2 हमेशा अवसरों की खोज में रहें कि इन नये विश्वासियों को मिलाकर नये लघु समूहों का निर्माण किया जाता रहे।

9.3 कभी–कभी ये नये लघु समूह आपके जानने के पहले ही आरम्भ हो जायेंगे, जब आपको उनके बारे में पता चलेगा तब प्रशिक्षण और अन्य प्रोत्साहन देने के द्वारा उन्हें उत्साहित करें और उनकी सहायता करें।

10. नये विश्वासियों की सामाजिक आवश्यकताओं का ध्यान रखें।

10.1 मसीही लोग अपने चारों ओर रहने वाले लोगों की सारी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते हैं, परंतु हमें तैयार रहना चाहिये कि जो ज़रूरतमंद लोग हैं उनकी जो कुछ हो सके वह सहायता करें।

10.2 जैसे आरम्भिक कलीसिया ने विधवाओं को खिलाया, (प्रेरितों 6:1–6), वैसे ही आज भी मसीहियों को ज़रूरतमंद लोगों के प्रति उदारता दिखाने के इच्छुक होना चाहिये।

पाठ–30
कलीसिया की वृद्धि के घटक

परिचय:

- इसलिये कि कलीसिया की बनावट आत्मिक है, उसकी वृद्धि का आश्वासन हम नहीं दे सकते हैं।
- अंतिम विश्लेषण यही है कि कलीसिया की वृद्धि परमेश्वर के द्वारा होती है, यह उसका मामला है। (1 कुरन्थियों 3:3–9)

1. अच्छे स्वास्थ की कलीसियाओं के गुण (वेगनर 1976:159)

1.1 पास्टर – वह सक्रिय और आशावादी अगुवा होता है जो अपने झुण्ड की अगुवाई उत्साह के साथ करता है ताकि उसके सदस्य स्वयं को उन कार्य–योजनाओं के लिये समर्पित करें जो उन्हें निरंतर की आत्मिक उन्नती में बढ़ाती हैं।

1.2 सदस्य – ये सारे वृद्धि के लिये गतिमान किये जाते हैं। ''किसी भी आन्दोलन के विस्तार का सीधा सम्बन्ध, उसकी अपने सारे सदस्यों को अपने मत को लगातार फैलाने में गतिमान करने की क्षमाता से जुड़ा होता है।'' (स्ट्राचन 1964: 27,28)

1.3 सदस्यों की संख्या (आकार) – यह इतनी ही होती है कि कलीसिया के सभी सदस्यों की आत्मिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

1.4 संतुलित सेवकाई

1.4.1 कलीसियाई सभा समारोह या आराधना के लिये एकत्रित होती है, जैसे कि ''एक भीड़।''

1.4.2 लघु समूह में सदस्य एक दूसरे को जानते हैं। (प्रायः 20 से कुछ कम सदस्य होते हैं।)

1.4.2.1 सीमित समूह जहां व्यक्ति स्वयं को प्रदर्शित करने के लिये स्वतंत्रता का अनुभव करता है।

1.4.2.2 व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रार्थना के निवेदन भी सब को बताने में स्वतंत्रता महसूस करता है।

1.5 यहां प्रायः एक–रूप सदस्यता होती हैः वे एक दूसरे के लिये लगाव अनुभव करते हैं; वे एक परिवार की भांति एक दूसरे से सम्बन्धित अनुभव करते हैं।

1.6 यहां प्रायः एक कार्य पद्धति होती है – कलीसिया में शिष्य बनाने की योजना होती हैः सुसमाचार प्रचार और नये विश्वासियों का फॉलोअप होता है।

1.7 प्राथमिकताएं : प्राथमिकताओं को परमेश्वर के वचन के द्वारा निश्चित की जाती हैं।

1.7.1 यीशु के प्रति वचनबद्धता होती है। (मत्ती 6:33)

1.7.2 यीशु की देह के प्रति वचनबद्धता होती है। (यूहन्ना 13:35, गलातियों 6:10)

1.7.3 यीशु के कार्य के प्रति वचनबद्धता होती है।

1.7.3.1 सुसमाचार–प्रचारीय आदेश (मत्ती 28:18–20)

1.7.3.2 सांस्कृतिक आदेश (उत्पत्ति 1:28–30)

2. घटक जो कलीसिया वृद्धि में योगदान देते हैं : एक कलीसिया तब बढ़ेगी :

2.1 जब कोई एक व्यक्ति कलीसिया रोपण के प्रति पूर्ण रूप से वचनबद्ध होगा।

2.2 जब समूह की अनुभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये रणनीति तैयार कर ली गई होगी।

2.3 जब आंतरिक और बाह्य घटक एक साथ वृद्धि के पक्ष में समर्थन करते होंगे।

2.4 जब वृद्धि समूह के सारे सदस्यों के लिये एक आदर्श सम्पत्ति बन गई होगी।

2.5 जब प्रशिक्षित किये गये अगुवे उस समूह के ही सदस्यों में से होंगे।

2.6 जब आत्मिक पुनर्जागरण ने वृद्धि के लिये एक अनुकूल वातावरण तैयार किया होगा।

2.7 जब कलीसिया नये सदस्यों की शिष्यता पर जोर देती होगी।

पाठ–31
कलीसिया की वृद्धि में बाधाएं

परिचयः

एक कलीसिया को निम्नलिखित परिस्थितियों में वृद्धि करना कठिन (असम्भव?) होगाः

1. कलीसिया के सदस्यों के भीतर विभाजन और पाप है।

1.1 कभी–कभी पास्टर या कलीसिया के सदस्य पाप में रहते हैं और इसे गोपनीय रखते हैं, किन्तु ऐसा हो जाना अपरिहार्य है कि समाज में के अविश्वासी उस पाप को जान जाते हैं। (गिनती 32:23)

1.2 कलीसिया में भौतिकवाद, जातिवाद, जाति–व्यवस्था के लिये पूर्वाग्रह, या दूसरे पापमय मनोभाव होते हैं।

2. सदस्यों के बीच रूढ़िवादिता या भय की आत्मा किसी भी परिवर्तन के प्रयत्न का प्रतिरोध करती है।

2.1 कभी–कभी क्षेत्र बदल जाता है जब विभिन्न लोग उस क्षेत्र में रहने आते हैं, और कलीसिया इन नये पड़ोसियों की सहायता के लिये अपनी सेवकाइयों को नहीं बदलती हैं।

2.2 कभी–कभी पास्टर नई सेवकाइयों को आरम्भ करने का प्रयास करेंगे या आराधना के कुछ गतिशील तत्व बढ़ाने का, और कलीसिया के सदस्य इन प्रयासों का विरोध करते हैं।

2.3 कभी–कभी कुछ नौजवान लोग, या भिन्न सामाजिक–आर्थिक स्तर से गरीब लोग कलीसिया में आना आरंभ करेंगे, परंतु कलीसिया के लोग उन्हें अपने मध्य स्थान देने के लिये अपनी सेवकाइयों में परिवर्तन करने से इन्कार कर देते हैं।

3. कलीसिया के पास महत्वपूर्ण वृद्धि के बजाय थोड़ी–सी वृद्धि करने की पद्धति होती है।

4. सदस्यता पाने की शर्ते बहुत कठिन होती हैं।

5. कलीसिया ग्रहणशील लोगों के बीच में सेवकाई करने को महत्व देने के बजाय विरोध करने वाले लोगों के बीच में निरन्तर सुसमाचार का प्रसार करती रह जाती है।
6. पास्टर का शैक्षणिक स्तर उस समूह के सदस्यों से या तो बहुत ऊंचा या बहुत कम होता है।
   6.1 ग्रामीण और कम शिक्षा वाले लोगों के लिये विद्वतापूर्ण और अधिक शैक्षणिक स्तर के पास्टर या शिक्षक के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को समझना और उसके प्रशंसक होना कठिन होगा।
   6.2 इसी तरह शहरी सुशिक्षित सदस्यों के लिये कम शैक्षणिक स्तर वाले पास्टर या शिक्षक के उपदेशों को महत्व देना कठिन होगा।
7. पास्टर सेवकाई पर एकाधिकार कर लेता है और दूसरों को अपने साथ सेवकाई में सहभागी नहीं करता है।
   7.1 सशक्त विश्वासी चाहते हैं कि वे परमेश्वर के द्वारा फलदायक सेवकाई के लिये उपयोग में लाये जायें। यदि पास्टर उन्हें ऐसे अवसर नहीं देता तो वे निरूत्साहित होंगे और दूसरी कलीसिया में जाने के लिये आकर्षित होंगे।
   7.2 बढ़ते हुए झुण्ड को सम्भालने के लिये बहुत परिश्रम करना होता है। यदि पास्टर इस बोझ को अकेले ही सम्भालने के प्रयास करता है तो कुछ मुख्य सेवकाइयां अधूरी छूट जायेंगी।
8. कलीसिया की धारणा यह होती है कि उसे लोगों की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना है, आत्मिक आवश्यकताओं को नहीं।
   8.1 कलीसिया को वह सब कुछ करना चाहिये जो वे अपने पड़ोसी की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये कर सकते हैं।
   8.2 तथापि, इसके साथ ही, उनकी आत्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देने की उपेक्षा न करें।
9. आत्मिक भोजन की कमी है।
10. पास्टर की ओर से निष्क्रियता है।
11. सदस्यों की ओर से निष्क्रियता है।
12. आर्थिक साधनों की कमी है।
13. आवश्यक प्रशिक्षण की कमी है।
14. राजनैतिक मतभेद (युद्ध) है।
15. सांस्कृतिक कठिनाइयां हैं (भाषा, रीति–रिवाज)।
16. अलग–अलग विश्वास के मिश्रण और झूठे पंथ के द्वारा विरोध है।
17. तर्कवाद (बुद्धिवाद) है।
18. सताव हैः
   18.1 कभी–कभी कलीसिया को संघर्ष करना पड़ता है, जब मसीही–विरोधियों के द्वारा सताव के कारण सदस्यों पर क्षेत्र छोड़ने के लिये दबाव डाला जाता है, या वे मार डाले जाते हैं।
   18.2 तथापि सताव बहुत बड़ी आशीष भी लाता है, इसलिये कि मसीह की देह पवित्र की जाती है।

पाठ–32
सामाजिक वर्ग और आर्थिक–सामाजिक प्रगति

1. सामाजिक वर्ग और कलीसिया की वृद्धिः
   1.1 पहले के पाठों में हम ने सीखा कि प्रत्येक कलीसिया ऐसे लोगों से बनी होती है जिनमें कुछ तो समानता होती है। हम एक शब्द ''एक–रूप'' उपयोग में लाते हैं जो इनके समान विशेषक–गुण की पहचान बताता है।
      1.1.1 ''एक–रूप '' घटक एक समान भाषा, जनजाति, जाति, या शैक्षणिक स्तर हो सकता है।
      1.1.2 एक घटक जो प्रायः एक–रूप समूह को निश्चित करता है वह है इसके सदस्यों का सामाजिक स्तर। (उच्च वर्ग के लोग प्रायः दूसरे उच्च वर्ग के लोगों के साथ अधिक आरामदायक महसूस करते हैं। निम्न वर्ग के लोग प्रायः उनके समान लोगों के साथ अधिक आरामदायक महसूस करते हैं।)
   1.2 सुसमाचार प्रचार ऐतिहासिक रूप से अमीरों (उच्च या मध्यम वर्ग) के बीच की अपेक्षा गरीबों के बीच (निम्न वर्ग) में अधिक प्रभावी रहा है ।

1.2.1 गरीब लोग, उनकी बहुत बड़ी आवश्यकताओं के समय में, यीशु के उद्धार देने वाले अनुग्रह और कलीसिया की सेवकाई की ओर अधिक खुले होते हैं। सम्पन्न लोगों को भौतिक कमियां कम होती हैं, और वे परमेश्वर की ओर मुड़ने की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने आर्थिक साधनों पर अधिक निर्भर होते हैं।

1.2.2 गरीब लोग प्रायः ऐसे पड़ोस में रहते हैं जहां लोग एक दूसरों के साथ अधिक समय व्यतीत करते हैं। उन लोगों तक आसानी से पहुंचा जा सकता है और उनकी मसीहियों की गवाही के सम्पर्क में आने संभावनायें अधिक होती हैं। सम्पन्न लोग बड़े–बड़े घरों में रहते हैं और स्वयं को गरीबों से अलग कर लेते हैं; अतः उन तक सुसमाचार के साथ पहुंचना कठिन होता है।

2. पाप से छुटकारा और ''सामाजिक आर्थिक उत्थान'' :

2.1 सामाजिक आर्थिक उत्थान वह शब्द है जिसका अर्थ होता है ''जब बहुत सारे परिवार, गांव, जनजातियां मसीही बन जाते हैं, और अपने सामाजिक स्तर में धीरे–धीरे ऊपर उठना अनुभव करना आरम्भ करते हैं।''

2.1.1 यह परमेश्वर की ओर से अपनी संतानों पर उसकी अलौकिक आशीष होने के कारण होता है।

2.1.2 जब लोग परमेश्वर को अपना हदय सौंप देते हैं, और उसके सिद्धान्तों के अनुसार चलना आरम्भ कर देते हैं, तब वे अपनी उन पापमय आदतों से स्वतंत्र हो जाते हैं जिन्होंने पहले उन्हें अपना गुलाम बना कर खा था और उन्हें दरिद्र बना दिया था। (पियक्कड़पन, जुआ, कामुकता इत्यादि)

2.1.3 परमेश्वर की संतान जब पाप के अपंग कर देने वाले पापाचार से स्वतंत्र किये जाते हैं, वे प्रायः स्वास्थ प्राप्त करते हैं, और उनके जीवन अधिक स्थिर हो जाते हैं।

2.1.4 मसीही लोग एक अच्छे कर्मचारी बनते हैं क्योकि वे ईमानदार और विश्वासयोग्य होते है।

2.1.5 क्योकि वे अब अपना धन शराब और तम्बाकू इत्यादि में व्यर्थ खर्च नहीं कर रहे हैं, अतः अब उनके पास अच्छे घर और शिक्षा के लिये पहले से अधिक पैसा उपलब्ध होता है।

2.1.6 इसलिये कि परमेश्वर उन्हे आशीष देता है, वे अक्सर अपनी संतानों को अच्छी शिक्षा दिलाने के योग्य बनते हैं, जिससे उनके बच्चे अच्छी आय की अच्छी नौकरी पाने के योग्य हो जाते हैं। इससे पता चलता है कि क्यों प्रथम पीढ़ी के मसीहियों के बच्चे अपने माता–पिता से अधिक ऊंचे आर्थिक–सामाजिक स्तर का आनन्द उठाते हैं।

2.1.7 मसीही परिवार और जनजातियां दशक–दर–दशक, और पीढ़ी–दर–पीढ़ी, प्रायः अधिक सम्पन्न होते जाते हैं।

2.2 यह ''आर्थिक–सामाजिक उत्थान,'' विशेषकर मसीहियों की एक पीढ़ी से अलगी पीढ़ी में होने वाला, यही दिखाता है कि क्यों मसीहत की प्रवृत्ति निम्नवर्ग से उच्चवर्ग में बढते जाने की होती है, बजाय इसके कि इसके विपरित होती जाये।

2.3 कलीसियाओं के द्वारा जिस चुनौती का सामना किया जाता है वह यह है : इसलिये कि मसीही परिवार (और कलीसियाएं) आर्थिक–सामाजिक उत्थान अनुभव करते है, (जब वे अधिक सम्पन्न हो जाते हैं), वे कैसे अपनी सेवकाइयों को निम्नवर्गों के लिये बनाये रख सकते है?

पाठ–33

कलीसिया की वृद्धि का आंकलन और मूल्यांकन – 1

1. हम क्यों कलीसिया के आंकड़ों/सांख्यिकी को एकत्रित करते हैं और उनका अध्ययन करते हैं?

1.1 हम कलीसिया के आंकड़े इसलिये एकत्रित करते हैं और उनका मूल्यांकन करते हैं क्योकि इस अंक–विवरण के द्वारा परमेश्वर हम पर मसीह के देह के स्वास्थ्य (या स्वास्थ्य की कमी) के बारे महत्वपूर्ण सत्य उजागर कर सकता है।

1.2 जैसे एक चिकित्सक हमारे तापमान, हृदय की धड़कनों, और रक्तचाप की जांच करने के द्वारा हमारे शरीरों की परीक्षा करता है, उसी प्रकार से हम कुछ निश्चित महत्वपूर्ण लक्षणों का अवलोकन करने के द्वारा कलीसिया के स्वास्थ्य का विश्लेषण कर सकते हैं।

1.3 हमारी कलीसिया के महत्वपूर्ण लक्षणों का सही विश्लेषण करने के द्वारा हम, (परमेश्वर की सहायता से), परिस्थिति के अनुरूप उपयुक्त सेवकाइयों और उपायों को आरम्भ कर सकते हैं।

2. कलीसिया की रूपरेखा : हमें किस प्रकार के आंकड़े एकत्रित करने चाहिये ।

2.1 स्थानीय कलीसिया के लिये हमें नियमित रूप से निम्नलिखित जानकारी रखना चाहिये :

2.1.1 बपतिस्मा लिये हुए सदस्यों की संख्या।

2.1.2 सप्ताह की मुख्य आराधना में औसत उपस्थिति ।

2.1.3 संण्डे स्कूल में औसत उपस्थिति।

2.1.4 प्रार्थना और बाइबल अध्ययन के लघु समूहों की संख्या ।

2.1.5 लघु समूहों के अगुवों की संख्या।

2.1.6 दी गई भेंट की कुलराशि।

2.1.7 नये विश्वासियों की संख्या जिन्होंने मसीह को स्वीकार किया है।

2.2 कलीसियाओं के समूह के लिये, (एक जिला, समाज, क्षेत्र, इलाका, या देश में के), हमें निम्नलिखित बातों की सूचना देनी चाहियेः

2.2.1 जिन बातों की सूची ऊपर दी गई हैं उन्हीं बातों की जानकारी एकत्रित करें परंतु सारी कलीसियाओं (या उपदेश दिये जाने वाले सारे क्षेत्रों) से जुड़े हुये अंकों के साथ।

2.2.2 कलीसियाओं और उपदेश–स्थानों की संख्या।

2.2.3 पास्टर्स, सुसमाचार प्रचारक, अगुवों और डीकनों की संख्या।

3. रोग–निदानः जब आंकड़े एकत्रित कर लिये जाते हैं तब हम क्या करते है?

3.1 हम एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक की या एक दशक तक की वृद्धि (या अवनति) का मूल्यांकन कर सकते हैं।

3.1.1 वार्षिक वृद्धि दर एक वर्ष की वृद्धि दर की गणना करता है।

3.1.2 सूत्र : पहले किसी एक वर्ष से सदस्यों की संख्या नोट कीजिये, और उस संख्या में से पिछले वर्ष के सदस्यों की संख्या घटा दीजिये। उस अंक को पिछले वर्ष के सदस्यों की संख्या से भाग दीजिये। फिर उस अंक को 100 से गुणा कर दीजिये। यह अन्तिम अंक वार्षिक वृद्धि दर के प्रतिशत के बराबर होता है।

3.1.3 दशक वृद्धि दर दस वर्षों तक की वृद्धि की गणना करता है।

3.1.4 सूत्र : किसी एक वर्ष से सदस्यों की संख्या नोट कीजिये, और उसमें से दस वर्ष पहले की सदस्यों की संख्या घटा दीजिये। इस अंक को दस वर्ष पहले के सदस्यों की संख्या से भाग दीजिये, और इसे 100 से गुणा कर दीजिये। यह अन्तिम अंक दशक वृद्धि दर प्रतिशत के बराबर होता है।

3.1.4.1 उदाहरणः 2012 में 300 सदस्य, 2002 में 140 सदस्य

3.1.4.2 दशक वृद्धि दर – 300 में से 140 घटाने से 160 आता है, इसे 140 से भाग देने और फिर 100 से गुणा करने पर आता है 114.3 प्रतिशत वृद्धि दर

3.2 ''72 का नियम'' वह अंकगणितीय सूत्र है जो गणंना करता है कि दी गई प्रतिशत दर पर यह किसी संख्या को कितने वर्षों में दुगुना करता है। प्रतिशत दर को वर्षो की संख्या द्वारा गुणा करने पर '72' के बराबर होता है।

उदाहरणः यदि आपकी कलीसिया में 80 सदस्य है और प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत की दर से बढ़ रहे है तो 72 को प्रतिशत दर 15 से भाग दीजिये। इसका उत्तर 4.8 है, जो दर्शाता है कि कितने वर्ष लगेंगे जिसमें सदस्यों की संख्या दोगुनी (80 से 160) हो जायेगी, यह मानते हुए कि वार्षिक वृद्धि दर बनाकर रखी गई है।

पाठ–34

कलीसिया की वृद्धि का आंकलन और मूल्यांकन – 2

4. विश्लेषण : लक्षणों के अनुमान से आप क्या सीख सकते हैं?
   - 4.1 हम अपनी कलीसिया (या जिले की कलीसियाओं) की वृद्धि को उस समाज में होनेवाली जनसंख्या की वृद्धि से तुलना कर सकते हैं, यह देखने के लिये कि क्या हम हमारे चारों ओर की जनसंख्या की तुलना में वृद्धि कर रहे हैं या जमीन हमारे हाथ से निकाल रही है?
   - 4.2 विभिन्न कलीसियाओं के उतार/चढ़ाव का विश्लेषण करने के द्वारा हम जान सकते हैं कि कहां सशक्तता या निर्बलता है, और उसके अनुसार उपाय कर सकते हैं।
   - 4.3 आपकी कलीसिया की वृद्धि का विश्लेषण करने के द्वारा हम निम्नलिखित प्रश्नों के लिये स्पष्टिकरण खोज सकते हैं :
     - 4.3.1 आपकी कलीसिया ने वृद्धि क्यों की?
     - 4.3.2 आपकी कलीसिया में उतार क्यों आया, या वृद्धि क्यों नहीं हुई?
     - 4.3.3 कौन सी गलतियां की गई होंगी जिन्हें सुधारने की आवश्यकता है?
     - 4.3.4 किन बाहरी घटकों ने कलीसिया की वृद्धि पर आघात किया?
       - 4.3.4.1 क्या राजनैतिक कारण थे ? (उदाहरणः क्या देश में ऐसी राजनैतिक घटनाएं हुईं जिन्हों ने लोगों को अस्थिर कर दिया या उनके कारण कुछ लोग कलीसिया से दूर रहने लगे)?
       - 4.3.4.2 क्या स्थानीय या आर्थिक घटक थे? (उदाहरणः क्या आपके शहर में फैक्टरी खुल गई है, और उस क्षेत्र में रोजगार के अवसर खुल गये हैं, जो नये लोगों को उस समुदाय में लाते हैं और कुछ लोग कलीसिया में आते है)?
       - 4.3.4.3 क्या कुछ आर्थिक घटक थे? (उदाहरणः सूखे के कारण किसानों को क्षेत्र से पलायन करना पड़ता है जिससे कलीसिया की उपस्थिति पर नकरात्मक प्रभाव पड़ता है)।
     - 4.3.5 किन आन्तरिक घटकों ने कलीसिया की वृद्धि पर प्रभाव डाला?
       - 4.3.5.1 क्या उस क्षेत्र में कलीसिया रोपण आन्दोलन चला, जो मजबूती से वृद्धि लाया?
       - 4.3.5.2 क्या परमेश्वर के आत्मा ने आपकी कलीसिया पर असाधारण रूप से आशीष लायी? यदि ऐसा है तो आत्मा ने कलीसिया को क्यों आशीषित किया होगा? क्या इन मापदण्डों की पुनरावृत्ति दूसरे स्थानों में की जा सकती है ताकि आत्मा उन स्थानों में भी आशीष देवे?
5. ईश्वरीय लक्ष्य स्थापित करनाः (फिलिप्पियो 3:13–14)
   - 5.1 लक्षणों का अच्छा अनुमान और कलीसिया के आंकड़ों का विश्लेषण हमें इस योग्य बनाता है कि हम अपने जीवनों और सेवकाइयो के लिये, और उन मसीहियों के लिये जो हमारी आत्मिक अगुवाई में है, ईश्वरीय लक्ष्यों को स्थापित कर सकें।
   - 5.2 हम ईश्वरीय लक्ष्यों को कहां स्थापित करना आरम्भ करते है?
     - 5.2.1 ईश्वरीय लक्ष्य स्थापित करने का आरम्भ प्रार्थना से होता है जब हम परमेश्वर से उसकी अगुवाई, बुद्धिमता, और दिशा–ज्ञान पूछते है।
     - 5.2.2 ईश्वरीय लक्ष्य स्थापित करने के लिये विश्वास की आवश्यकता होती है, और यह जानने की कि उन लक्ष्यों तक पहुंचना पूरी तरह से परमेश्वर द्वारा दिये जाने वाले सामर्थ्य, प्रावधान और अशीष पर निर्भर होता है।
   - 5.3 अनुसरण करने हेतु कदम :
     - 5.3.1 अगले पांच वर्षो के लिये वास्तविक लक्ष्यों को स्थापित करें।
     - 5.3.2 प्रत्येक वर्ष के अन्त में अपनी प्रगति का मूल्यांकन करें।
     - 5.3.3 प्रत्येक वर्ष के अंत में, अपने लक्ष्यों को अगले वर्ष के लिये उचित रीति से समायोजित करें।

पाठ–35
संदर्भ–अनुकूलन – 1[1]

परिचयः

संदर्भ–अनुकूलन क्या है? संदर्भ–अनुकूलन यह है कि सुसमाचार की जानकारी इस प्रकार से देना कि लोग उसे समझ सकें। सिद्धांतों और धारणाओं को, दी गई परिस्थिति में उपयुक्त, उचित, मिलता–जुलता बनाना ही संदर्भ–अनुकूलन करना है। मसीही कार्यप्रणाली में यह ऐसा है कि परमेश्वर के कभी न बदलने वाले वचन को हमेशा बदलने वाले संदर्भ (परिस्थिति) में उचित रीति से बताना।

1. संदर्भ–अनुकूलन की आवश्यकता :
   - 1.1 संदर्भ–अनुकूलन में, सुसमाचार को इस प्रकार से बताना शामिल होता है कि सुसमाचार उस मनुष्य की और उसके समाज की आवश्यकता को संपूर्णता में पूरा कर सके। दूसरे शब्दो में, सुसमाचार को लोगों के उस संदर्भ के अनुकूल बनाना होता है जिनमें वे रहते हैं।
   - 1.2 'संदर्भ–अनुकूलन' देशीकरण के लिये दूसरा शब्द नहीं है किन्तु वह इस विचार को अपने में शामिल करता है।
   - 1.3 सुसमाचार के अर्थपूर्ण संदर्भ–अनुकूलन में मसीही मिशन के कम–से–कम तीन क्षेत्र सम्मिलित किये जाने चाहिये।
     - 1.3.1 सुसमाचार के ईश्वरविज्ञान की व्याख्या।
     - 1.3.2 सुसमाचार की विषय वस्तु की अभिव्यक्ति ।
     - 1.3.3 सुसमाचार के लिये दिये जाने वाले प्रतिउत्तर की समझ।
2. भारत का बहु–सांस्कृतिक संदर्भ :
   - 2.1 भारत बहुत सारी संस्कृतियों, भाषाओं और जनजातियों का देश है।
   - 2.2 अतः इसे बहुराष्ट्रीय राज्य, संस्कृतियो का राज्यसंघ समझना सही है। हम एक देश में कई राष्ट्र हैं।
   - 2.3 सन् 1971 की जनगणना के अनुसार, भारत हैरान कर देने वाली विविधता प्रस्तुत करता है जिसमें 1,652 भाषाएं (मातृ भाषाएं) सक्रियता से बोली जाती हैं। इनमें से पन्द्रह शासकीय भाषाएं हैं और अन्य 370 बड़ी भाषाएं और बहुत–सी दूसरी छोटी भाषाएं हैं।
   - 2.4 भारत बहुत सारे धर्मो की भूमि हैः हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, बौद्ध, मसीही, और बहुत से स्वदेशीय धर्म, मत, और पंथ हैं।
3. संदर्भ–अनुकूलन की जोखिम लेना :
   - 3.1 सुसमाचार का संदर्भ–अनुकूलन की ओर किया गया कोई भी प्रयास खतरा लिये हुये होता है, क्योकि हमेशा ही धर्मों के बीच समन्वयता/एकता स्थापित किये जाने का खतरा होता है, जो फिर सर्वहितवाद की ओर ले जा सकता है कि अंततः सब मनुष्यों का उद्धार होगा।
   - 3.2 धर्मों के बीच समन्वयता का खतरा विशेषकर तब बड़ा होता है जब कभी सुसमाचार का संदर्भ–अनुकूलन हिन्दु संस्कृति में किया जाता है। ''हिन्दु धर्म में अद्भुत क्षमता है कि उन विचारों और विधियों को अपने में अपना ले, और समायोजित कर ले, जो उसके सिद्धांतों और परंपराओं के विपरित है।''
4. परमेश्वर अपने आप को मनुष्य के संदर्भ में व्यक्त करता है : बाइबल के उदाहरण–
   - 4.1 संदर्भ में व्यक्त करने का पुराने नियम का उदाहरण : हम पुराने नियम के समय में पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने स्वयं के विषय में मनुष्यों को, मनुष्यों के सांस्कृतिक संदर्भ में, और मनुष्य की संस्कृति के शब्दों में, जानकारी दी है। उदाहरण के लिये : लैव्यव्यवस्था के बलिदान और भेंट बहुत अधिक स्थानीय संस्कृति से सम्बन्धित थे। कुछ आश्यर्चकर्म जो परमेश्वर के द्वारा किये गये वे न मात्र इस्त्राएलियों के द्वारा समझे गए, परंतु अन्यजातियों के द्वारा भी समझ लिये गए।
   - 4.2 संदर्भ में व्यक्त करने का नये नियम का उदाहरणः
     - 4.2.1 हम नये नियम में पढ़ते हैं, ''वचन देहधारी हुआ और हमारे बीच में डेरा किया'' (यूहन्ना 1:14)। इसका अर्थ है, परमेश्वर मनुष्य बना, और हमारे बीच में रहा, और उसका नाम नासरत का यीशु था।

4.2.2 देहधारण में, परमेश्वर सृष्टिकर्ता ने मनुष्य का स्वरूप लेने के द्वारा स्वयं को सीमित करना चुना और एक बालक के समान बैतलहम में जन्म लिया जो कि मनुष्यों के सांस्कृतिक संदर्भ में था। अपने आप को व्यक्त करने की इस प्रक्रिया में परमेश्वर ने एक विशिष्ठ ऐतिहासिक और सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ को चुना जो इब्री लोगों का था।

4.3 परमेश्वर का वचन मनुष्यों के संदर्भ में बतलाया गया।

4.3.1 परमेश्वर का वचन मनुष्यों की भाषा में दिया गया, मनुष्यों के द्वारा लिखा गया ताकि मनुष्य इसे समझ सके।

4.3.2 पवित्र आत्मा ने बाइबल के लेखको को (विभिन्न मनुष्यों को) प्रेरित किया, और उनके ज्ञान, कौशल, अनुभव, और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उपयोग किया। उदाहरण के लिये, पुराने नियम में एक चरवाहे लड़के दाऊद ने परमेश्वर को एक चरवाहा जैसे समझा जब उसने भजन संहिता लिखाः ''परमेश्वर मेरा चरवाहा हैं,'' और बुद्धिमान पुरूष सुलेमान लिख सकता था, ''परमेश्वर का भय मानना, बुद्धि का आरम्भ है।''

4.3.3 इस प्रकार, पवित्र आत्मा ने परमेश्वर के वचन को मनुष्य के सन्दर्भ में बताने के लिये बाइबल के लेखकों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उपयोग किया।

4.4 ''महान आदेश के लिये बाइबल की बुनियाद'' इय पाठ्यक्रम में और अधिक बताया गया है कि यीशु और पौलुस ने, परमेश्वर के राज्य के आगमन से संबंधित अपने संदेश को किस प्रकार संदर्भ के अनुकूल बनाया।

पाठ–36

संदर्भ–अनुकूलन – 2[1]

1. सुसमाचार सारी संस्कृतियों का आंकलन करता हैः

1.1 सुसमाचार का एक विशेष घटक है कि यह किसी भी संस्कृति के सारे पहलुओं का आंकलन अपने परिक्षण और मानकों के अधिनस्थ करता है।

1.2 सुसमाचार के द्वारा किसी संस्कृति के मूल्यांकन के तहत निम्नलिखित कार्यविधि होती हैः

1.2.1 अस्वीकार करनाः जो परंपराएं बाइबल के विपरित हैं उन्हें अस्वीकार करना। उदाहरण के लिये : मूर्तिपूजा, जादू टोना और अनैतिक जीवन।

1.2.2 अनुकूलन करनाः व्यावहारिक सहयोगी बात को आरंभ करना। उदाहरण के लिये : फसल कटाई के धार्मिक संस्कार के ऐवज में धन्यवादी पर्व को, जादूगरी और जादू टोना के ऐवज में प्रार्थना को प्रयोग में लाया जा सकता है।

1.2.3 रूपांतरण करनाः अच्छे गुणों का स्वरूप बदलना। उदाहरण के लिये : सामूहिक एकजुटता, बड़ों का आदर करना इनके तरीके यदि बाइबल के विपरीत हैं तो उनका स्वरूप बदलना।

2. सांस्कृतिक परिवर्तन : आवश्यक और अनावश्यक तत्व

2.1 संस्कृति में परिवर्तन लाने के समय मिशनरी यह अवश्य ही जान लें कि आवश्यक और अनावश्यक तत्व के मध्य क्या अंतर है, और उस संस्कृति में चर्चा करके बदलने के लायक घटक कौनसे हैं और कौनसे ऐसे हैं जो न अच्छे हैं न बुरे हैं।

2.1.1 आवश्यक तत्व : ये तत्व वे ईश्वरीय आदेश या विधियां हैं जो हमारे मसीही विश्वास या कलीसिया के लिये प्रत्येक संस्कृति में अत्यावश्यक हैं। उदाहरण के लियेः दस आज्ञाएं

2.1.2 अनावश्यक तत्व : ये तत्व वे प्रथाएं हैं जो हमारे मसीही विश्वास या कलीसिया में प्रत्येक संस्कृति में आवश्यक नहीं हैं। उदाहरण के लिये, प्रभु भोज में दाखरस को देना।

2.2 इसके विषय में ''बाइबलीय आधार पाठ्यक्रम'' में और अधिक पढ़ाया गया है।

3. सांस्कृतिक रीति–रिवाज को जांचना

3.1 किसी भी सांस्कृतिक रीति–रिवाज को कलीसिया में स्वीकार या अस्वीकार करने के पहले जांचने हेतु निम्नलिखित पांच प्रश्न पूछे जाने चाहिये :

3.1.1 क्या यह हमारे विश्वास और विधि के लिये आवश्यक है?

3.1.2 क्या यह कलीसिया की उन्नति करता है?

3.1.3 हमारे मसीही चरित्र पर इसका क्या प्रभाव होगा?

3.1.4 क्या इस व्यवहार का अन्य लोगों पर प्रभाव होगा?

3.1.5 इसे करने के द्वारा क्या यह सुसमाचार के प्रति सच्ची गवाही देगा?

3.2 ईश्वर–विज्ञान के संदर्भ–अनुकूलन के लिये, या स्वयं ही ईश्वर–विज्ञान प्रस्तुत करने के संबंध में, पॉल हैबर्ट ने निम्नलिखित निर्देश प्रस्तुत किये हैं :

3.2.1 मिशनरियों के लिये अवश्य है कि लक्ष्य की गई संस्कृति की भाषा में पवित्रशास्त्र का अनुवाद करें और उसी भाषा में सिखायें। भविष्य में किये जाने वाले सारे कार्यों की शुरूवात इन्हीं दो बातों से होनी चाहिये।

3.2.2 सारे मिशनरियों के लिये आवश्यक है कि ''सारे विश्वासियों का याजकपन,'' इस बाइबलीय शिक्षा को स्वीकार करें, और सारे लोगों को अनुमति दें कि वे अपने लिये स्वयं बाइबल को पढ़ें और उसकी व्याख्या करें।

3.2.3 मिशनरियों को भरोसा करना चाहिये कि जब लोग पवित्रशास्त्र को पढ़ते हैं तब पवित्र आत्मा उनमें एक जैसे ही काम करता है।

3.2.4 अवश्य है कि मिशनरी इस बात के लिये तैयार रहें कि लोगों से गलती होगी– गलती करना यह महानतम् विशेषाअधिकार सब को है।

3.2.5 अवश्य है कि मिशनरी स्वीकार करें कि कलीसिया में सब की भागीदारी है, और वे बाइबल की अपनी समझ को अपने साथी मसीहियों के साथ साझा करें और उनकी अपनी समझ को सुनें। मिशनरियों को यह भी जानने और समझने की आवश्यकता है कि कलीसिया के इतिहास के संपूर्ण काल में, कलीसिया ने पवित्रशास्त्र को किस तरह से समझा है और उसकी व्याख्या कैसे की है।

3.3 विभिन्न सांस्कृतिक परिस्थितियों में सुसमाचार सुनाने वाले के लिये आवश्यक है कि वह अपने आप को मसीही मूल्यों और मांगों के प्रति वचनबद्ध रखे। वह निरंतर इस वचनबद्धता की सीमा में ही रहे, ताकि ऐसा हो कि वह सुसमाचार को उसके सच्चे अर्थ में बता सके और, इसके साथ ही, उसे सुनने वालों के लिये उपयुक्त तरीके से बता सके।

3.3.1 शिष्यता के जीवन के प्रति वचनबद्धता : इसमें निहित है– मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध, उसे उसके पुत्र के माध्यम से पिता करके जानना। यह वचनबद्धता प्रदर्शित होती है एक सतत जिये जाने वाले मसीही जीवन के द्वारा, जो यीशु मसीह की प्रभुता के प्रति और पवित्र आत्मा से सामर्थ्य और मार्गदर्शन पाने के प्रति पूर्णतः समर्पित है।

3.3.2 पवित्रशास्त्र के प्रति वचनबद्धता : विभिन्न संस्कृतियों में कार्य करने वाले मिशनरी के लिये आवश्यक है कि वह अपने विश्वास और व्यवहार के लिये स्वयं को बाइबल के अधिकार के अधिन वचनबद्ध, समर्पित कर दे। वचनबद्धता की इस बात में बहुत–से भारतीय थेअलोजियन असफल हो जाते हैं। सुसमाचार को सांस्कृतिक संदर्भ में स्पष्ट करने वाले के लिये यह अनिवार्य योग्यता है कि वह परमेश्वर के वचन के अधिकार को स्वीकार करे।

3.3.3 संस्कृति का अध्ययन करने, और संस्कृति को समझने के प्रति समर्पण : उपयुक्त संदर्भ–अनुकूलन तभी संभव है जब वार्तालाप करने वाला जिनसे बात कर रहा है उन लोगों की संस्कृति को जानता है।

पाठ–37

संदर्भ–अनुकूलन – 3[1]

1. अपने संदर्भ में (परिस्थिति में) अनुकूल ऐसी कलीसियाओं के रोपण का महत्व :

1.1 यह उन्हें बाहरी सहायता के बिना आत्मनिर्भर होने में सहायक होगा : एक मूल स्थानीय और आत्मनिर्भर कलीसिया स्थापित करना यह सभी मिशनरी प्रयासों का लक्ष्य होना चाहिये। मिशन के द्वारा आर्थिक सहायता, मिशन के द्वारा नियंत्रित संचालन, और मिशनरी अगुवे यह चिरस्थायी नहीं परंतु अस्थायी बात होनी चाहिये।

1.2 संदर्भ–अनुकूलन सहायक होगा कि वह कलीसिया तेजी से वृद्धि का अनुभव करे : स्वदेशी कलीसिया स्थापित करने में असफल होने का परिणाम यही होगा कि उस पूरे क्षेत्र या जनजाति में कलीसिया रोपण करने में रूकावट आ सकती है। जबकि स्वदेशी कलीसियाएं कलीसियाओं की तेजी से वृद्धि और बहुगुणित होने को सुसाध्य बनाती हैं।

1.3 संदर्भ–अनुकूलन सहायक होता है कि वह कलीसिया अपनी पहचान को अभिव्यक्ति कर सके : मिशनरी को लक्ष्य करना चाहिये कि ऐसी स्वदेशी कलीसिया का रोपण करे जो अपने सांस्कृतिक संदर्भ में अपनी पहचान व्यक्त कर सकती है, नाकि किसी दूर के क्षेत्र या कलीसिया की संस्कृति से जुड़ी हुई दिखाई देती है।

2. स्थानीय कलीसिया के वास्तविक स्वदेशीकरण में निम्नलिखित सारे घटक सम्मिलित होते हैं :

2.1 गवाही का संदर्भ–अनुकूलन : स्थानीय कलीसिया एक ऐसी ईकाई होती है जो परमेश्वर के द्वारा चुनी गई है, और पवित्रशास्त्र पर आधारित की गई है, ताकि गवाही और सुसमाचार प्रचार का आदर्श माध्यम ठहरेगी। जब कि नये विश्वासी अपने गैर–मसीही रिश्तेदारों और मित्रों से चर्चा करते हैं तो उनके पास मसीह के प्रभावकारी गवाह होने की क्षमता होती है। इस प्रकार से सुसमाचार प्रचार हो जा सकता है और कलीसिया रोपित हो जा सकती है।

2.2 सुसमाचार–प्रचार की पद्धतियों का संदर्भ–अनुकूलन : प्रत्येक संस्कृति में उपयुक्त सुसमाचार–प्रचार के लिये सर्वोत्तम रीति से योग्य ठहरेगी ऐसी पद्धतियां ढाली जानी चहिये। उदाहरण के लिये, बहुतेरे जनजाति समूहों में गीत और कहानियां बताना उपयुक्त पद्धति है। मिशनरियों को चाहिये कि सुसमाचार की बातों को संचारित करने के लिये स्थानीय मसीहियों को उनकी अपनी स्वदेशी पद्धतियों को उपयोग करने की अनुमति दें, (उदाहरण के लिये, भजन गाना और स्वदेशी संगीत उपकरणों का उपयोग करना), और संस्कृति में उपयुक्त न लगने वाली पद्धतियों को सम्मिलित करना टालना चाहिये।

2.3 कलीसिया प्रशासन और नेतृत्व का संदर्भ–अनुकूलन : कलीसिया के प्रशासन का स्वरूप ऐसे होना चाहिये कि वह स्थानीय नेतृत्व और संचालन के नमूनों के अनुरूप ठीक लगेगा। मिशनरी को नयी कलीसिया में नेतृत्व के विदेशी तरीकों को थोंपना नहीं चाहिये, चाहे वे तरीके भारत के ही किसी हिस्से से हों और भारत में कहीं और काम आते हों। आरम्भ से ही मिशनरी को स्थानीय अगुवों के ही साथ काम करना चाहिये। नेतृत्व के वरदानों को पहचानने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि लोगों के साथ काम करते हुए उनकी क्षमताओं और आत्मिक वरदानों को पहचाने। जिन्होंने अपनी योग्यता और ईमानदारी को सिद्ध किया है ऐसे जाने–पहचाने अगुवों से पूछा जा सकता है कि वे उस भूमिका को निभायें जिसके लिये वे उत्तम रीति से योग्य हैं। फिर आगे नेतृत्व का विकास होता जा सकता है जब ये स्वाभाविक अगुवे मिशनरी के द्वारा प्रशिक्षित किये जाते हैं, और नयी स्थापित कलीसिया में नेतृत्व की भूमिकाओं को निभाते हैं।

2.4 आर्थिक प्रबंध का संदर्भ–अनुकूलन : स्व–सहायता यह स्वदेशी कलीसिया का एक मुख्य पहलू है। मिशन के द्वारा आर्थिक सहायता का अर्थ प्रायः मिशन का वर्चस्व होना होता है। इसके विपरित, स्व–सहायता से आत्मनिर्भर और शक्तिशाली कलीसियाओं का निर्माण होता है। स्व–सहायता का सिद्धान्त बिल्कुल प्रारम्भ से ही लागू कर दिया जाना चाहिये। आरंभ में, नये विश्वासियों को कलीसिया की पूंजी सम्भालने की और निर्णय लेने की छोटी–छोटी जिम्मेदारियां सौंपी जानी चाहिये। और जब वे अपनी योग्यता और ईमानदारी को सिद्ध कर देते हैं, तब धीरे–धीरे बढ़ाते हुए उन्हे बड़ी जिम्मेदारियां सौंप देनी चाहिये। यही होना चाहिये कि कलीसिया के सदस्य पूंजी को ऐसे देखें कि यह हमारा धन है और हमारे परिश्रम से आ रहा है। इस प्रकार से उनका दान देना व्यक्तिगत, त्यागपूर्ण और आत्मिक होगा। अवश्य है कि मिशनरी नये विश्वासियों को अपनी आय का ऐसा नियमित लेखा–जोखा रखने में प्रशिक्षित करें कि फिर उसकी जांच और अनुमोदन किसी तीसरे स्वार्थरहित दल के द्वारा किया जा सके।

2.5 आराधना का संदर्भ–अनुकूलन : आराधना में स्वदेशी तरीकों को अपनाया जाना चाहिये, मात्र उन तरीकों को छोड़कर जो पवित्रशास्त्र की शिक्षा या भक्ति/पवित्रता के चरित्र के विपरीत होते हैं। प्रार्थना की पुस्तकों, लिटर्जी अर्थात विधियों और संस्कारों के लिखित साहित्य, भक्ति–गीत संग्रह तथा संगीत के उपकरणो का संदर्भ–अनुकूलन करने की आवश्यकता होती है, तथापि यह ध्यान में रखते हुये कि उनमें जो पवित्रशास्त्रीय हिस्सा है उसे ना छोड़ा जाये और उसकी सच्चाई के साथ समझौता ना किया जाये। बजाय इसके कि जिस संगीत से मिशनरी परिचित है उसे लागू करे, वहां वर्तमान संगीत और आराधना के तरीकों को उचित रीति से मसीही अर्थ में अपनाये।।

2.6 कलीसिया भवन का संदर्भ–अनुकूलन : लक्ष्य की गयी संस्कृति के गांव में प्रार्थना के लिये छत या कलीसिया भवन बन जाना नये विश्वासियों की यह समझने में सहायता करता है कि वह कलीसिया उनकी अपनी है। गांव में घर प्रायः छोटे होते हैं, अतः उनमें सभा के लिये स्थान कम होता है। सारे नये विश्वासी किसी के निजी घर में आराधना करने में स्वतंत्रता का अनुभव नही कर पाते हैं। इसलिये आराधना के लिये सार्वजनिक स्थान का होना आवश्यक होता है, न मात्र नये विश्वासियों के लिये परंन्तु उनके मित्रों और रिश्तेदारों के लिये भी। आराधना के सार्वजनिक स्थान ऐसा वातावरण प्रदान करते हैं जहां आने और आराधना करने में लोग स्वतंत्रता महसूस करते हैं। यह कलीसिया की वृद्धि में गति लाता है।

2.7 जीवन शैली का संदर्भ–अनुकूलन : ''कार्य शब्दों से अधिक जोर से बोलते हैं।'' यह बात एक मिशनरी और प्रचारक के जीवन और कार्य में बहुत अधिक खरी होती है। जीवन शैली के संदर्भ–अनुकूलन में मिशनरियों का पहनावा, भोजन की आदतें और व्यवहार सम्मिलित होते हैं। इन बाह्य दिखावटों और क्रियाओं के अलावा, उनकी मनोवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है। उनमें उन्हें ग्रहण करनेवाली उस संस्कृति के लिये उच्च आदर होना चाहिये और उसके अच्छे गुणों की प्रशंसा करने का उन्हें प्रयास करना चाहिये। मिशनरी के व्यवहार और मनोवृत्ति दोनों महत्वपूर्ण होते हैं।

.....

अन्तिम नोटः–

[1] The information in this lesson and several others is excerpted with permission from S.D. Ponraj's book: "Stategies for Church Planting Movement." For further understanding the book can be purchased from Mission Educational Books, 11 Konnur High Road, Ayanavaram, Chennai – 600023, India.